निवेदन

हमारे असीम पुण्योदय से इस वर्ष (संवत १९९५ वि० में) प्रातः स्मरणीय श्रीमज्जैनाचार्य धैर्यवान् शान्तमूर्ति अनेक शुभ गुणालंकृत पूज्यवर श्री १००८ श्रीसूरचन्द्र जी महाराज की अपार कृपासे जम्मू में प्रिय व्याख्यानी पंडित मुनि श्री १००८ श्री हीरालाल जी महाराज, तपस्वी मुनि श्री १००७ श्री नानकराम जी म० और लघुवयस्क तपस्वी मुनि श्री १००५ श्री दीपचन्द जी महाराज ठा० ३ का चातुर्मास सुख शान्ति और आनन्दपूर्वक सम्पन्न हुआ है इन मुनिराजों की असीम कृपा और उपदेश से स्थानीय जैन संघ में पर्याप्त धार्मिक प्रगति हुई है। तपस्या और धर्म-ध्यान भी अच्छा हुआ है। विशेष उल्लेखनीय विषय यह है कि प्रातस्मरणीय स्वर्गीय श्रीमज्जैनाचार्य शास्त्र-विशारद सौम्यमूर्ति अनेक गुणालकृत पूज्यवर श्री १००८ श्री मुन्नालाल जी म० और आदर्श तपस्वी श्री १००८ श्री बालचन्द्र जी म० के उपदेश से स्थापित श्री जीव-दया-फंड जम्मू जो कुछ समय से शिथिल पड़ गया था वह प्रिय व्याख्यानी पं० मुनि श्री हीरालाल जी म० के उपदेश से पुनर्संचालित हो गया है। और उक्त फण्ड को सुचारु रूपसे संचालन करने के लिए उद्देश्य और नियम आदि श्री जैन सभा जम्मू की स्वीकृतिपूर्वक निर्माण किये गये हैं। और मुनिश्री के सद्बोध से जैन बिरादरी (संघ) के प्रत्येक घरमें क्रमशः नित्यप्रति आयम्बिल की परिपाटी प्रारम्भ होगई है। इस प्रकार महाराज

श्री के चातुर्मास होने से हमारे [illegible] का [illegible] हुआ है।

अतएव इस चातुर्मास की पुण्य-स्मृति में जैन-सभा जम्मू द्वारा संचालित श्री महावीर जैन-सभा जम्मू की ओर से यह "आदर्श चरितम्" प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है पाठक महोदय इस पुस्तक को पढ़ कर लाभान्वित होंगे।

श्री महावीर जैन-सभा सं० १९७६ विक्रमीय में स्थानीय नवयुवकों के प्रयत्न से श्री जैन-सभा जम्मू की सत्ता में स्थापित हुई थी। इस सभा के उद्देश्य—जैन धर्म-प्रचार, समाज के नवयुवकों का संगठन और विद्या प्रचार करना थे। इस सभा ने सामाजिक और धार्मिक कई काम किये हैं। स्थानीय समाज में जागृति पैदा करने का श्रेय इसी सभा को है। इसी सभा ने जम्मू में महावीर जयन्ति उत्सव सर्व प्रथम मनाना आरम्भ किया था। और श्री जैनसभा से इसी सभा ने अनुरोध करके श्री महावीर जैन रात्रि-पाठशाला तथा श्री महावीर जैन लायब्रेरी तथा रीडिंग रूम स्थापित करवाये थे। तथा यही सभा संवत् १९८३ वि० तक जैन सभा जम्मू की आर्थिक सहायता से उपरोक्त सभी संस्थाओं का संचालन भली भांति कर रही थी। किन्तु अब इस संस्था का कार्य-शिथिल हो जाने के कारण उपरोक्त संस्थाएँ पुनः श्री जैन सभा जम्मू द्वारा सुचारु रूप से चल रही है।

आभार-प्रदर्शन

शास्त्र-विशारद प्रवर्तक पं० मुनिश्री १००८ श्री हजारीमलजी म०, मनोहर व्याख्यानी पं० मुनिश्री १००८ श्री सुख मुनिजी म० और प्रिय व्याख्यानी श्री हीरालालजी म० के हम अतीव आभारी हैं, कि जिनकी असीम कृपा से यह आदर्श चरितम् हमें प्राप्त हुआ है।

प्रिय व्याख्यानी मुनि श्री हीरालालजी महाराज को भी हम हार्दिक धन्यवाद देना कभी नहीं भूल सकते, कि जिनके सद्बोध से प्रेरित होकर हम इस चरित को प्रकाशित करने में समर्थ हुए हैं।

अन्त में हम यह कहे बिना नहीं रहेंगे, कि इस आदर्श चरितम की हिन्दी भाषा के संशोधन तथा प्रूफ रीडिंग में उत्साही युवक श्री० दीपचन्दजी सुराना गंगधार (मालवाड़) निवासी ने पर्याप्त परिश्रम किया है। और इसके सिरने तथा सादे श्लोकों की डिजाइन, प्रिंटिंग आदि कार्यों में देहली निवासी उत्साही बन्धु श्री द्वारका प्रसादजी जैन ने काफी दौड़ धूप की है। इसके लिए हम उपरोक्त दोनों महानुभावों को हार्दिक धन्यवाद समर्पण करते हुए उनके प्रति आभार प्रदर्शन करते हैं।

श्री संघ के नम्र सेवक

ईश्वरदास मोदाणी — त्रिलोकचन्द जैन

प्रेसिडेन्ट — सेक्रेटरी

श्री महावीर जैन सभा जम्मू

❀ प्रस्तावना ❀

संसार का यह नियम है कि वह जीवन की पवित्रता को धार्मिकता और आचरणहीनता को सांसारिक [illegible] पाश्चात्य विचारों मे तो इसी सिद्धान्त पर [illegible] दिया गया है। भारत मे राजनीति को धर्म [illegible] उसमे शुभ आचरण की कुछ अनिवार्यता [illegible] मे उसको धर्म से बिलकुल प्रथक् करके [illegible] दम सम्बन्ध विच्छेद कर दिया गया है। [illegible] प्रतिज्ञा करना, राष्ट्रहित के नाम पर [illegible] निराश्रित नागरिको पर बम बरसाना [illegible] रणहीनता जन्य है। भारत मे [illegible] थी, किन्तु आचार्य विष्णु गुप्त [illegible] का समावेश करके उसको बहुत [illegible] जामा पहिनाने का यत्न किया [illegible]

ने उनको कौटिल्य नाम दिया था। किन्तु जैन नीतिकारों ने जैन धर्म के धर्मप्रधान होने के कारण कौटिल्य की इस व्यवस्था को कभी स्वीकार नहीं किया और वह बराबर आचरणशुद्धि पर जोर देते रहे।

आज भारतवर्ष ने संसार के सम्मुख अपने उस प्राचीन सिद्धान्त को फिर व्यवहारिक रूप में उपस्थित किया है। महात्मा गांधी ने धर्म को राजनीति से प्रथक् रखते हुए भी राजनीति में आचरण शुद्धि को अनिवार्य बतलाया है। जिस समय महात्मा गांधी ने अहिंसा द्वारा भारत को स्वतंत्र करने का आंदोलन आरंभ किया तो उस समय अनेक राजनीतिज्ञों ने उनकी हंसी उड़ाई, कई एक ने तो उनको निर्बल एवं कायर तक कह डाला। किन्तु उन्होंने आलोचकों की कोई चिन्ता न करके यह भी घोषणा की कि अहिंसामयी सविनय अवज्ञा आन्दोलन के प्रत्येक कार्यकर्ता के लिये यह आवश्यक एवं अनिवार्य है कि वह मन, वचन और कर्म से पूर्ण अहिंसक बना रहे और सब प्रकार के सांसारिक प्रलोभनों से बचता हुआ पूर्णतया सदाचारी हो। आज संसार इस बात को जानता है कि महात्मा गांधी पूर्णतया व्यवहारिक एवं सफल प्रमाणित हुए, जब कि उनके आलोचक अव्यवहारिक एवं असफल प्रमाणित हुए। यद्यपि आजकल कांग्रेस आरामतलब एवं समयसाधु (मिले हुए अवसर से लाभ उठाने वाले) पुरुषों से भर गई है, किन्तु महात्मा गांधी फिर भी आचरण शुद्धि पर बल देते हुए उसमें से आचरणहीन

व्यक्तियों को निकाल देने की योजना बना रहे है। इस प्रकार यह सिद्ध है कि आचरण शुद्धि लौकिक, पारलौकिक, धार्मिक, राजनीतिक अथवा व्यवहारिक सभी प्रकार के जीवन मे आवश्यक है। अपने जीवन को पवित्र बनाने का सब से सुगम उपाय है पवित्र जीवन वाले महापुरुषों की जीवन गाथा का अध्ययन करना।

अतएव इसी उद्देश्य को दृष्टि मे रखते हुए वर्तमान ग्रन्थ 'आदर्श चरितम्' को पाठको के सन्मुख उपस्थित किया गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ पूज्य आचार्य श्री खूबचन्द्र जी महाराज का जीवन चरित्र है। वैसे तो हिन्दी संस्कृत तथा प्राकृत मे जीवनचरित्रों की इतनी भरमार है कि उनको पढ़ना भी कठिन है, किन्तु पूज्य आचार्य श्री खूबचन्द जी महाराज के इस जीवन चरित्र मे कुछ ऐसा विशेषता है जो अन्य ससारिक व्यक्तियों के जीवनचरित्र मे नहीं पाई जाती।

पुरुष हृदय स्वभाव से ही पतनशील है। तनिक ऐसा प्रलोभन भी बड़े २ धीर वीर पुरुषो के हृदय को चलायमान कर देता है। फिर कंचन और कामनी का प्रलोभन तो संसार मे सबसे बड़ा प्रलोभन है। भारतवर्ष के साधुओ और ब्रह्मचारियो की जीवन घटनाओ पर सामूहिकरूप से विचार करने पर पता चलता है कि उनमे से अनेक ऐसे निर्धन थे कि उनका विवाह होना तो दूर, उनको भरपेट अन्न तक नहीं मिलता था, जिससे वह आगे चल करके साधु या ब्रह्मचारी बनते। अनेक व्यक्ति विक्षिप्त होकर

भी पत्नी मर जाने से ब्रह्मचारी या साधु बन गए। कई ऐसे थे जिनका विवाह हो चुका था, किन्तु जो अपनी पत्नी का ठीक पालने में असमर्थ थे, अतः घर कमाने खाने की चिन्ता से छूटने के लिये साधु या ब्रह्मचारी बन गए। अनेक व्यक्ति आजीविका का साधन न होते हुए भी अनुकूल पत्नी न पाने से साधु बन जाते हैं। अनेक व्यक्ति घर वालों के व्यवहारों से खिन्न होकर घरबार छोड़ देते हैं। किन्तु प्रभूत कंचन और अनुकूल कामिनी पाकर घर केवल आत्मोन्नति की भावना से घर को परित्याग करने वाले विरले ही शूर होते हैं। आचार्यश्रीलक्ष्मणजी ऐसे ही धीर आत्मा हैं। आपके घर में सांसारिक सम्पत्ति की कमी न थी। आपकी सांसारिक जीवन की पत्नी अत्यन्त पतिपरायणा, सुंदरी, अनुकूल एवं आज्ञाकारिणी थी। आपके पिता का भी आपमें अगाध स्नेह था। आपके भाई आदि अन्य कुटम्बी भी आपके सब प्रकार से अनुकूल थे। अतएव इस प्रकार के सुख साधनों के रहते वैराग्य की भावना उत्पन्न होना अलौकिक आश्चर्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इस बात को इतिहास के सामान्य पाठक भी जानते हैं कि गौतम बुद्ध के संसार के महापुरुषों में गिने जाने का कारण उनके उपदेश की अपेक्षा उनका त्यागपूर्ण जीवन ही अधिक है, इतिहास लेखक उनके अपनी प्यारी पत्नी यशोधरा तथा अल्पायु पुत्र राहुल को सोते हुए छोड़ कर चले जाने की घटना का वर्णन अत्यन्त भावुक शब्दों में किया करते हैं। साहित्य के विद्वानों ने इस

घटना के आधार पर अनेक नाटकों, काव्यों तथा गद्य ग्रन्थों की रचना करके इस बात के महत्त्व को प्रगट किया है। जैन जाति के लिये यह बात कम सौभाग्य की नहीं है कि उसने भी ऐसे वीर नररत्न को उत्पन्न किया, जिसने बुद्ध के समान अपनी पत्नी को जानबूझ कर छोड़ दिया। बल्कि एक बात मे तो आचार्य खूबचन्द्र जी गौतम बुद्ध से भी बढ़ जाते हैं। सम्भवतः गौतम बुद्ध का आत्मा गृहत्याग करते समय बलवान् नहीं था। उनको भय था कि पत्नी के स्नेह सिक्त शब्दों के माधुर्य मे उनका गृह-त्याग का निश्चय डगमगा न जावे। अतः वह पत्नी से पष्ट कुछ भी न कह कर चोरों के समान छिप कर भागे और केवल उस समय उसके सामने प्रगट हुए जब उनकी कीर्ति नए धर्म के प्रवर्तक के रूप मे भारतवर्ष भर मे फैल गई।

आचार्य श्रीखूबचन्द्र जी महाराज के चरित्र मे आरम्भ से ही दृढ़ता दिखलाई देती है। वह साहसपूर्वक अपना विचार अपने कुटुम्बियों को सुना देते हैं। पिता से वह गृहत्याग के विषय पर खुले दिल से वादविवाद करते है और घर को छोड़ कर चले जाते हैं। किन्तु जैन मुनियों ने एक बड़ी जबर्दस्त मर्यादा स्थापित की हुई है। वह घर वालों की अनुमति के बिना किसी को भी मुनिदीक्षा नहीं देते। आचार्य खूबचन्द्र जी महाराज घर से तो चले आए, किन्तु इस मर्यादा की दीवार ने उनके मार्ग को एक दम रोक दिया। परन्तु वह तो अपने निश्चय पर पर्वत के समान अचल थे। उन्होंने निश्चय कर लिया था

कि सब प्रकार की कठिनाइयों को पार करके भी जिनदीक्षा ग्रहण की जावे। अस्तु, उन्होंने अपने पिता को अनुमति देने का संदेश भेज कर अपने आपको फिर एक कठिन परीक्षा के लिये तय्यार किया। वास्तव मे यह परीक्षा संसार की सब से कठिन परीक्षा थी। पिता ने आपको निम्बाहेड़ा बुला कर आपके सामने आपकी पत्नी को कर दिया। वर्तमान पुस्तक का इस प्रसग पर होने वाला पति-पत्नी संवाद वास्तव मे अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। इस संवाद को पढ कर सहसा यह उपमा मन मे आ जाती है कि एक निर्बल प्राणी एक अत्यन्त ढालू पर्वत पर खडा है। उसको एक स्त्री नीचे की ओर खीच रही है, किन्तु एक पुरुष उसको ऊपर की ओर खीच रहा है। आचार्य श्री का आत्मा वास्तव मे उस समय ससार रूपी अत्यन्त ढलुवां पहाडी पर खडा था जिसको उनकी पत्नी नीचे को खैचती थी और आचार्यश्री उसको ऊपर को खैच रहे थे। पहाडी से नीचे की ओर को खैचने वाला व्यक्ति कैसा ही निर्बल होने पर भी ऊपर से खैचने वाले बलवान से बलवान पुरुष को भी नीचे को खैच लेता है, किन्तु आचार्य खूबचन्द्र जी अलौकिक शक्ति सम्पन्न थे। उन्होंने अपनी ही शक्ति से न केवल अपनी पत्नी को निरुत्तर कर दिया वरन उससे दीक्षा लेने की अनुमति भी प्राप्त कर ली। वास्तव मे पति पत्नी का यह संवाद बुद्ध के 'मार-विजय' वाली घटना को स्मरण कराता है।

यह कहा जा सकता है कि आचार्य श्री ने अपने कल्याण के

लिये एक नयी अवस्था को छोड़ कर उच्चकोटि की स्वार्थपरता का परिचय दिया। किन्तु वर्तमान ग्रंथ को पढ़ने से इस प्रश्न का उत्तर भी अपने आप ही मिल जाता है। यद्यपि घर से आप स्वार्थभावना से पृथक् हुये थे, किन्तु आपके मन में सदा परोपकार के भाव लगे रहे अतएव आपने पूरे वर्ष भर सामान्य रूप से और चातुर्मास में विशेष रूप से कल्याणकारी उपदेश देकर सदा ही उनका कल्याण किया। इतना ही नहीं, वरन् आप कल्याण के इसी संदेश को सुनाने के लिये उसी प्रकार अपने नगर सिम्बहेड़ा में गये, जिस प्रकार गौतम बुद्ध अपनी पत्नी यशोधरा, पुत्र राहुल और पिता शुद्धोदन को उपदेश देने के लिये कपिलवस्तु गये थे। यह प्रसन्नता की बात है कि बाद में आचार्यश्री की पत्नी भी जैनदीक्षा को लेकर आर्यिका बन गई और अब घोर तपस्या कर रही हैं।

वर्तमान पुस्तक में आचार्यश्री खूबचन्द्र जी महाराज के चरित्र के अतिरिक्त उनके पूर्ववर्ती पांच आचार्यों का संक्षिप्त चरित्र देकर उनके शिष्यों के नाम भी दिये गये हैं। इन सब बातों को देखकर यह कहना पड़ता है कि इस ग्रन्थ का नाम 'आदर्श-चरित्रम्' ठीक ही रखा गया है।

यह कहा जा सकता है कि आदर्श चरित्र तो अन्य सम्प्रदाय के साधुओं का भी हो सकता है। किन्तु उन महानुभावों के प्रति पूर्ण आदर प्रकट करते हुए भी हम इस युक्ति को नहीं मान सकते। हमारी समझ में अहिंसा संसार का सर्वोत्तम धर्म

'अहिंसा परमो धर्मः' ।

भगवान् महावीर ने आज से अढाई सहस्र वर्ष पूर्व इसी अहिंसा का उपदेश दिया था और आज महात्मा गांधी भी उसी अहिंसा का उपदेश दे रहे हैं। अन्य धर्मों पर धार्मिक आक्षेप न करते हुए भी हम को यह कहने के लिये विवश होना पड़ता है कि अहिंसा धर्म का पालन जैनियों के समान संसार का अन्य कोई धर्म नहीं करता। जैनियों के अतिरिक्त संसार मे इसाई और बौद्ध भी अहिंसा के प्रचारक बनने का दावा करते है। किन्तु इन दोनों ही धर्मों मे मांसभक्षण को वैध माना है गया। बाइबिल मे कई स्थलों पर स्वयं ईसा मसीह के मांस भक्षण करनेका उल्लेख किया गया है। बौद्ध धर्म मे तो मृतक प्राणी का मांस खाने मे कोई पाप ही नहीं माना जाता। प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् अश्वघोष के बुद्ध चरित्र को देखने से प्रगट है कि बुद्ध की मृत्यु उस रोग के कारण हुई थी जो उसको शूकर का मांस न पचने के कारण हुआ था। बौद्ध साधु आज कल भी अधिक संख्या मे मांस खाते है। वर्तमान समय के प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु महापंडित राहुल सांकृतायन जी जब हम से दिसम्बर १९३६ मे स्वर्गीय बैरिस्टर कांशी प्रसाद जायसवाल के स्थान पर पटना में मिले तो उन्हों ने यही हास्य किया, "शास्त्री, जी आपको मोटा होने का कोई अधिकार नहीं, क्योंकि आप मांस नहीं खाते ?"

इसमे कोई संदेह नहीं कि बुद्ध ने प्राचीन काल मे भगवान ९ ि२ के समान वेदों के नाम पर की जाने वाली पशु हिंसा

का विरोध किया था, किन्तु इसके साथ ही उन्हों ने मृतक मांस खाने का विधान भी कर दिया था। वास्तव में बौद्ध धर्म मध्यम मार्ग है। वह न तो जैनियों के समान घोर तपश्चरण करके शरीर को कष्ट देने का ही समर्थन करता है और न प्राचीन काल के वैदिक याज्ञकों एवं वाममार्गियों के समान अत्यन्त भोगमय जीवन व्यतीत करने को ही पसंद करता है। इसी लिये उसने भोजन के विषय मे भी मध्यम मार्ग का प्रतिपादन करते हुए मृतक मांस का विधान किया है। संभवतः यहां इस बात को सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है कि मांस भक्षक कभी भी पूर्ण अहिंसक नहीं हो सकता। महात्मा गांधी ने भी इसी लिये अहिंसा के अनुयाइयों को मांस भक्षण न करने का आदेश दिया। वल्कि महात्मा जी तो इससे आगे यहां तक बढगए कि उन्होंने प्राणियों के दूध तक का परित्याग कर दिया। केवल प्राण रक्षा के ध्यान से डाक्टरों के अत्यंत अनुरोध से बकरी के दूध की अपने लिये छूट रखी हुई है। यहां एक बात अत्यत रोचक है। गौतम बुद्ध ने अपने अनुयाइयों में मृतक मांस का विधान किया तो महात्माजी मृतक चर्म का विधान करते हैं। उनका कहना है कि प्राणियों को उसी प्राणि के चमड़े का जूता पहिनना चाहिये जो अपने आप मर गया हो। कसाई-खाने मे मारे हुए प्राणी के चर्म के जूते पहिनने के आप घोर विरोधी हैं। किंतु आचार्य श्रीखूबचन्द जी महाराज इससे भी आगे निकल गए हैं कि वह जूता मृतक मांस का जूता तो

पैर में कोई भी वस्तु नहीं पहिनते। जैन मुनियों का यह नियम है कि वह अपने आगे की चार हाथ भूमि को देखकर नंगे पाव ही चला करते हैं, जिससे कोई प्राणि उनके पांव के नीचे न आ जावे।

वास्तव में ऐसे चरित्र को ही आदर्श चरित्र कहना चाहिये और यही 'आदर्श चरित्र' है।

इति शम

आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री M O Ph, H.M D
काव्य-साहित्य तीर्थ आचार्य,
प्राच्य विद्या वारिधि, आयुर्वेदाचार्य।
८११ धर्मपुरा देहली
१६ जनवरी १६३६ ई०।

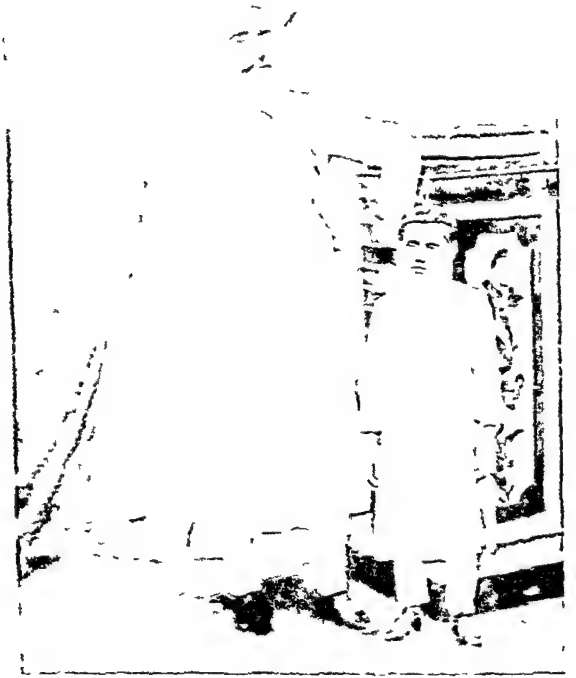

चिरंजीव बाबू सूरजमल जी मुंसफी और उनके पूज्य पिता धर्मप्रेमी स्वर्गीय लाला लोदनमल जी जैन जौहरी मार्फ वाडा देहली ।

* वन्दे वीरम् *

आदर्श चरितम्

प्रथम परिच्छेद

मङ्गलाचरण

श्रीवीरः सर्वदिग्गैः कनकरुचितनूरोचिरुद्दीप्तदीपै-
र्मङ्गल्यःसोऽस्तु दीपोत्सव इव जगदानन्दसन्दर्भकन्दः।
सूक्तिदिव्यप्रभीयं मृदुविशदपदा मानसे धीयमाना,
भव्यानां भव्यभूत्यै भवतु भवतुदे भावना भावितानाम् १।

भावार्थ—जो सब दिशाओं में व्याप्त सुवर्ण कान्ति वाले शरीर की प्रभा रूपी प्रज्वलित दीपों से जगत में पूर्ण आनन्द प्रद, माङ्गलिक दीपोत्सव के समान हैं। तथा जिनकी दिव्य प्रभा संयुक्त मधुर और स्पष्ट-वाक्य-सन्दर्भित, दिव्य भाषा मोक्षार्थी भव्य प्राणियों के हृदयों को पवित्र करने वाली तथा कल्याणकारी है। वे ही परम पवित्र वीर भगवान सब के लिए मङ्गल प्रदान हों ॥१॥

जयतु दुर्नयपङ्कजनीवने, हिमनतिर्मतिकैरवकौमुदी ।
शमयितुं तिमिराणि जने महाद्विजिनभाजिनभाजिनभारती

भावार्थ—वीतराग प्रभु की वाणी, दुर्नीति रूपी कमल । वन में ओस के समान, बुद्धि रूपी कुमोदिनी को विकास करने के लिए चंद्रिका के समान, तथा पाप रूपी अन्धकार को निवारण करने के लिए दिव्य प्रभा के समान है। इस पवित्र जिन वाणी की सदैव जय हो ! विजय हो !! ॥२॥

यैः क्षुण्णाः प्रसभद्विवेकपविना क्रोपादिभूमिभृतो-
योगाभ्यासपरश्वधेन मथितोयैर्मोहधात्रीरुहः ।
बद्धः संयमसिद्धमन्त्रविधिना यैः प्रौढकामज्वरः,
तान्मोक्षैकसुखानुषङ्गरसिकान्वन्दामहे योगिनः ॥३॥

भावार्थ—जिन साधुओं ने अपने अपूर्व विस्तृत ज्ञान रूपी वज्र के द्वारा क्रोधादि पर्वतों को चूर्ण-विचूर्ण कर डाला है ! तप-रूपी तीक्ष्ण कुल्हाडे द्वारा मोह रूपी वृक्ष को समूल नष्ट कर डाला है । और संयम रूपी सिद्ध-मन्त्र द्वारा इस दुर्जय काम ज्वर को बाँध लिया है। उन मोक्ष रूपी अक्षय सुख के अनुरागी, मुक्ति-रसिक साधुजनों को सादर वन्दना करते है ॥ ३ ॥

मोहोयत्परिसेवया विघटते ज्ञानं चितोभासते,
भव्यानां परिसेवनीयः सुपथोयस्माच्च संजृंभते
तिर्यग्मानुषदेवनारकगतीस्त्यक्त्वा च कर्मव्रजम्,
मुक्तिं यान्ति जनाः सदा स जयतात् श्रीजैनधर्मोमहान्

आसीद्वासववृन्दवन्दितपदद्वन्द्वः पदं सम्पदाम्,
तत्पट्टाम्बुधिचन्द्रमागणधरः श्रीमान् सुधर्माभिधः ॥६॥

भावार्थ— सिद्धार्थ-कुल-दिवाकर श्री वर्द्धमान स्वामी के चरण-रज-सेवक, सच्चरित्र आदर्श मुनि-मण्डल में अग्रगण्य, इन्द्र द्वारा वन्दनीय, पवित्र चरण-युगल वाले, सम्पत्तियों के आयतन और श्री वर्द्धमान प्रभु रूपी समुद्र के लिए चन्द्रमा के तुल्य श्रीमान् 'सुधर्म स्वामी' नामक गणधर हुए ॥६॥

तद्गच्छाश्रयतोऽभूवुरनुपा गच्छाः पवित्राशया-
स्तन्मध्ये भुवि विद्यते च हुक्मीचन्द्राख्यगच्छोऽधुना ।
तत्रास्ते मुनिखूबचन्द्रसुमतिर्विश्वम्भराभामिनी,
भास्वद्भालललामकोमलयशः स्तोमः शमारामभूः ॥७॥

भावार्थ—श्री सुधर्म स्वामी के गच्छ में, उनके आज्ञानुवर्ती, उच्च अभिप्राय वाले अनेक गच्छ हुए हैं। जिनमें से एक पवित्र गच्छ श्री हुक्मीचन्द्र जी म० के नाम से विख्यात हुआ। जो इस समय विद्यमान है। इन्हीं श्री हुक्मीचन्द्र जी म० की सम्प्रदाय में हमारे चरित्रनायक मुनि श्री खूबचन्द जी महाराज, जो कि सद्बुद्धि के भण्डार हैं, सुशोभित हुए हैं। आपकी कोमल कीर्ति का समूह, शान्ति के उपवन बन कर, पृथ्वी-मण्डल के तेजस्वी ललाट पर विस्तारित हो रहा है ॥७॥

सः श्रीयुक्ततपोधनस्त्रिपथगा पाथः प्रवाहैरिव,
स्वैरं यस्य यशोभरैः क्षितितलं पावित्र्यमासूत्रितम् ।

गाम्भीर्यादिगुणोज्ज्वलः शुभपरः श्रीजैनधर्मे मतिः,
तस्याहं चरितं जनेषु विदितं वक्तुं भवाम्युद्यतः ॥८॥

भावार्थ—गंगा-जल के प्रवाह के समान जिनके कीर्ति-समूह से, पृथ्वी-तल पवित्र हो गया है। उन्हीं, तपोधन नाथ सौम्य-गाम्भीर्यादि गुणों से सम्पन्न, कल्याणकारी, जैन धर्म पर अटूट श्रद्धा रखने वाले, मुनि श्री खूबचंद्रजी म० के परम आदर्श चरित्र को, जो कि विश्व-विख्यात है, वर्णन करने के लिये मैं प्रस्तुत हुआ हूँ।

जन्म-भूमि

श्रीभारते भारतवर्षिराज्यं, श्रीकान्तसामन्तकपूरप्राज्यम्।
नव्वावसाहेबयशोभिर्भ्राज्यं, समस्ति लक्ष्म्या भुविटोंकराज्यम्

भावार्थ—इस धर्म-प्राण भारतवर्ष में, क्रान्ति की वर्षा करने वाला क्षत्रिय राज-पुत्रों के समूह से सुशोभित समृद्धिशाली, राजपुताना प्रान्त के अन्तर्गत श्रीमान नवाब साहब के यश से शोभायमान, लक्ष्मी से विलसित एक टोंक नामक राजस्थान है ॥९॥

सौभाग्यसौन्दर्यगते तरुण्याः, वक्षः स्थले राजति हारयष्टिः
तथैव राज्ये शुभधामयष्टिः, निम्बाहडा राजति पूः समष्टिः

भावार्थ—इस टोंक नामक राजस्थान में भव्य-भवनों की कतारों से सुशोभित, एक 'निम्बाहेडा' नामक परम मनोहर और सुन्दर नगर है। जो उस राजस्थान का भूषण है। वह ठीक इस प्रकार शोभायमान है, जिस प्रकार कि किसी सौन्दर्य-संयुक्त तरुणी के वक्षस्थल पर चन्द्रहार सुशोभित होता है ॥१०॥

कन्याएँ, यों छः सन्तानों से संयुक्त, श्री सेठ टेकचन्दजी अपने अधिक उत्कृष्ट भावों से विशेष धर्माराधना मे तत्पर हुए ॥१६॥

जन्म और बाल्यावस्था

वर्षे व्योमगुणाङ्कभूपरिमिते श्रीवैक्रमीये शुभे
शुक्ले कार्तिकमासके बुधदिनेऽष्टम्यां तिथौ सम्मिते ।
पुत्रःश्रीयुतखूबचन्द्रगुणधीः सम्प्राजनिष्टावनौ,
आत्माऽयं जगतः सदागतिसमस्तेजोभिः समलंकृतः ॥१७॥
स्वस्थाने मकरे स्थितः शशिपुतः सूर्यस्य पुत्रः शनिः
नन्दाङ्केऽवनिनन्दनः गुरुसितौ कन्यागतौ रेजतुः ।
राहुर्मेषगतोबुधश्चवसुगः सूर्यस्तुलायां यया-
वित्थं तस्य तदा बभौ ग्रहगणः मीनस्य लग्ने शुभे ॥१८॥

भावार्थ—सूर्य के समान तेजस्वी, अनेक शुभ गुणालंकृत, हमारे चरित्रनायक मुनि श्री खूबचन्द्र जी म० का शुभ जन्म विक्रम संवत् १९३० के कार्तिक शुक्ला अष्टमी बुधवार के दिन हुआ था। उस समय मीन लग्न था। और शनि, अपनी राशि मकर में, चन्द्रमा सहित शोभायमान था। मङ्गल धन मे, तथा वृहस्पति एवं शुक्र कन्या मे, स्थित थे। मेष में राहु और वृश्चिक पर बुध था। सूर्य और केतु, तुला राशि पर थे ॥१७-१८॥

चरित्रनायक जी की जन्म कुण्डली

श्री शुभ संवत १९३० वि० कार्तिक शुक्ला ८ बुधवार

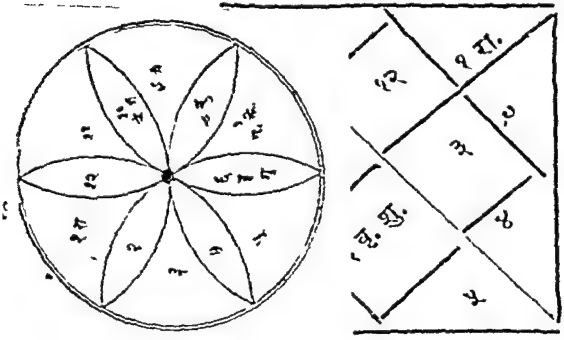

यज्जन्मन्यभवन्प्रसन्नवदनाः काष्ठा गृहान्तःस्थिताः,
दीपाः कान्तिविलोपकार्भकभयाच्चन्दा पतद्वृत्तयः ।
उद्भूतप्रतिभाद्भुतस्य मतिमच्चन्द्रस्य चिद्रुपता,
माहात्म्यं स्तुमहे किमस्य निखिलग्रन्थाब्धिमन्थात्मनः
खूबस्तातगृहाङ्गणे तु ववृधे कल्पद्रुमोनन्दने,
विन्ध्याद्राविवकुञ्जरोमणिगणः श्रीरोहणे पर्वते ।
सोऽयं कान्तिसुसारशालिवपुषा पित्रोर्हृदाह्लादकः,
संसारे सुमनोमनोरमगुणैर्देवेन तुल्यो बभौ ॥२०॥
चन्द्रः पद्म इवामले च कमले कोशः शुचावम्बुदः,
कन्दोऽम्भोधितले मनोरमगुणैः श्रीचैद्रुमः पादपे ।

कन्याएँ, यों छः सन्तानों से संयुक्त, श्री सेठ टेकचन्दजी अपने अधिक उत्कृष्ट भावों से विशेष धर्माराधना मे तत्पर हुए ॥१६॥

जन्म और बाल्यावस्था

वर्षे व्योमगुणाङ्कभूपरिमिते श्रीवैक्रमीये शुभे
शुक्ले कार्तिकमासके बुधदिनेऽष्टम्यां तिथौ सम्मिते ।
पुत्रःश्रीयुतखूबचन्द्रगुणधीः सम्प्राजनिष्टावनौ,
आत्माऽयं जगतः सदागतिसमस्तेजोभिः समलंकृतः ॥१७॥
स्वस्थाने मकरे स्थितः शशिपुतः सूर्यस्य पुत्रः शनिः
नन्दाङ्केऽवनिनन्दनः गुरुसितौ कन्यागतौ रेजतुः ।
राहुर्मेषगतोबुधश्चवसुगः सूर्यस्तुलायां यया-
वित्थं तस्य तदा बभौ ग्रहगणः मीनस्य लग्ने शुभे ॥१८॥

भावार्थ—सूर्य के समान तेजस्वी, अनेक शुभ गुणालंकृत, हमारे चरित्रनायक मुनि श्री खूबचन्द्र जी म० का शुभ जन्म विक्रम संवत १९३० के कार्तिक शुक्ला अष्टमी बुधवार के दिन हुआ था। उस समय मीन लग्न था। और शनि, अपनी राशि मकर मे, चन्द्रमा सहित शोभायमान था। मङ्गल धन मे, तथा बृहस्पति एवं शुक्र कन्या मे, स्थित थे। मेष में राहु और वृश्चिक पर बुध था। सूर्य और केतु, तुला राशि पर थे ॥१७-१८॥

चन्द्रनाथ जी की जन्म कुण्डली
श्री शुभ सवत १९३० वि० कार्तिक शुक्ला ८ बुधवार

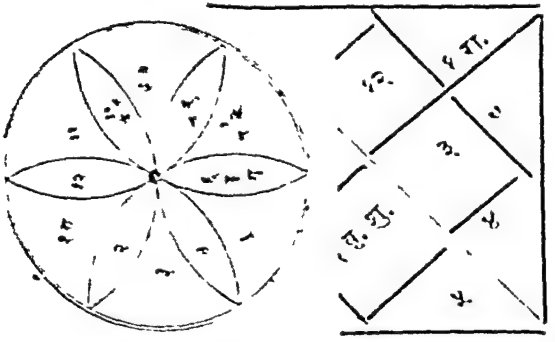

यज्जन्मन्यभवन्प्रसन्नवदनाः काष्ठा गृहान्तःस्थिताः,
दीपाः कान्तिविलोपकार्भकभयाद्भ्रान्ता पतद्वृत्तयः ।
उद्भूतप्रतिभाद्भुतस्य मतिमच्चन्द्रस्य चिद्रुपता,
माहात्म्यं स्तुमहे किमस्य निखिलग्रन्थाब्धिमन्थात्मनः
सुस्तातगृहाङ्गणे तु वटुधे कल्पद्रुमोनन्दने,
विन्ध्याद्राविवकुञ्जरोमणिगणः श्रीरोहणे पर्वते ।
सोऽयं कान्तिसुसारशालिवपुषा पित्रोर्हृदाह्लादकः,
संसारे सुमनोमनोरमगुणैर्देवेन तुल्यो बभौ ॥२०॥
चन्द्रः पद्म इवामले च कमले कोशः शुचावम्बुदः,
कन्दोऽम्भोधितले मनोरमगुणैः श्रीवैद्रुमः पादपे ।

चरित्रनायक जी की जन्म कुण्डली

श्री शुभ संवत १९३० वि० कार्तिक शुक्ला ८ बुधवार

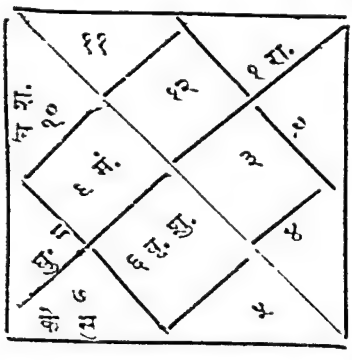

यज्जन्मन्यभवन्प्रसन्नवदनाः काष्ठा गृहान्तःस्थिताः,
दीपाः कान्तिविलोपकार्भकभयाद्मन्दा पतद्वृत्तयः ।
उद्भूतप्रतिभाद्भुतस्य मतिमच्चन्द्रस्य चिद्रूपता,
माहात्म्यं स्तुमहे किमस्य निखिलग्रन्थाब्धिमन्थात्मनः
खूबस्तातगृहाङ्गणे तु ववृधे कल्पद्रुमोनन्दने,
विन्ध्याद्राविवकुञ्जरोमणिगणः श्रीरोहणे पर्वते ।
सोऽयं कान्तिसुसारशालिवपुषा पित्रोर्हृदाह्लादकः,
संसारे सुमनोमनोरमगुणैर्देवेन तुल्यो बभौ ॥२०॥
चन्द्रः पक्ष इवामले च कमले कोशः शुचावम्बुदः,
कन्दोऽम्भोधितले मनोरमगुणैः श्रीवैद्रुमः पादपे ।

यावत् बुद्धिबलं जहार सकलाः विद्याश्च सोयं सुधी-
स्तातस्तं प्रददौ धनं सुमनसा विद्यागुरोरर्चने ।
विद्याप्राप्तिरिहत्रिधासुविनयैरर्थैः पुनर्विद्यया,
जानन्नीतिमिमां विचारचतुरः सर्वोचितार्थप्रदः ॥२२॥

भावार्थ—हमारे चरित्रनायक श्री खूबचन्द्र जी ने अपने बुद्धि-बल के अनुसार अनेक विद्याओं को सम्पादन किया। और उनके पूज्य पिता श्री टेकचन्द्र जी ने भी विद्या-गुरुओं के लिए पर्याप्त धन व्यय किया। क्योंकि वे यह भली भाँति जानते थे, कि विद्या-प्राप्ति के केवल तीन ही साधन हैं। यथा-(१) गुरु की सेवा करना (२) विद्या के बदले विद्या का दान देना और (३) विपुल धन राशि का प्रदान करना। इन साधनों के अतिरिक्त विद्या-प्राप्ति का और कोई चौथा साधन नहीं है ॥२२॥

सोऽयं षोडशवार्षिकोऽभवदथ स्पष्टैर्गुणैर्दक्षतौ,
दार्याद्यैर्गुणवत्सुभारतभुवि प्राप्तैकरेखः परम् ।
लोकानां नयनेषु रूपकमला रेखा अनेका ददौ,
बुद्ध्यानन्त्वमशेषरोचकतया चित्तेषु चाश्चर्यतः ॥२३॥

भावार्थ—औदार्यादि गुणों से विभूषित, परम सौन्दर्यशाली श्री खूबचन्द्र जी ने सोलह वर्ष की अल्पायु में ही, अपनी स्वाभाविक तत्त्वान्वेषिणी अलौकिक बुद्धि का परिचय देकर जन-समाज को आश्चर्य में डाल दिया और उनके हृदयों में स्थान कर लिया ॥२३॥

पौरन्ध्रीशुभगीतिनाप्यनुगतोगेऽस्य द्वारं गतौ ॥३३॥
तत्रानन्दपरम्परया स निवसन् वाणिज्यदक्षः सुधीः,
लक्ष्म्याश्चार्जनतः पितुः सुमनसः प्रीतेः पदं प्रार्जयन् ।
चित्ते धर्मपरः सदा सुखकरोमातुश्च सेवापरः,
प्रीत्यानन्दकरोऽभवत् स सुजनः सर्वस्य सन्तोषदः ॥३४॥

भावार्थ—इस प्रकार विवाह का कार्यक्रम समाप्त होने के पश्चात, श्री खूबचन्द्र जी अपनी भार्या श्रीमती साकरदेवी सहित, अपने सास-श्वसुर से विदा हुए। और अनेक प्रकार के आभूषणों तथा पुर-निवासी जनों से संयुक्त होकर उन्होंने अपने ग्राम निम्बाहेड़ा की ओर प्रस्थान कर किया। निम्बाहेड़ा मे प्रवेश करते ही पुरन्धरियों ने नाना प्रकार के मंगल-गीत गाए। और बधाइयाँ दीं फिर बड़े ही स्वागत समारोह पूर्वक उन नव विवाहित वर-वधू को घर पर लाया गया। अब हमारे चरित्रनायक व्यवसाय-कुशल श्री खूबचन्द्र जी अपने वाणिज्य कौशल द्वारा अटूट लक्ष्मी का संचय करके अपने पिता श्री टेकचन्दजी के मन को परम संतुष्ट करने लगे। तथा यथोचित सेवा-भक्ति द्वारा माता जी के चित्त को भी पूर्ण प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगे। इस प्रकार वे प्रेम-भाव तथा धार्मिक भाव से अपने गृहस्थ-जीवन को सुख पूर्वक व्यतीत करते हुए जनता के हृदय को आनन्दित करने लगे ॥३३-३४॥

आदर्श चरितम्

जैनागम तत्त्वपारिधि, त्यागमूर्ति, श्रीमज्जैनाचार्य परमप्रतापी

पूज्य श्री खूबचन्द्रजी महाराज।

[illegible]

[illegible]

द्वितीय परिच्छेद

वैराग्य की उत्पत्ति

वाणिज्यादिकलोककार्यकरणाद्दक्षोधनं प्रार्जयन्,
वैराग्यांकुरभावपूर्णमनसा श्रीखूबचन्द्रः सुधीः ।
धर्मश्चापि विदन् मुनींश्च सततं संवन्दमानः मुहु-
र्गार्हस्थ्ये गमयां बभूव स युवा तुर्याणि वर्षाणि सः ॥३५

भावार्थ—इस प्रकार वाणिज्य-विद्या-विशारद श्री खूबचंद्रजी ने गृहस्थ-अवस्था में केवल चार वर्ष रह कर, अटूट धन-राशि का सम्पादन करते हुए, निर्ग्रंथ-मुनियों का भी पर्याप्त सत्संग किया। अर्थात् केवल इन चार वर्षों में ही उन्होंने मुनिराजों की सेवा-सुश्रूषा और चरण-वन्दनादि करते हुए उनसे सच्चे धर्म का स्वरूप समझ कर उसे हृदयंगम किया। अतः अब उनके हृदय में वैराग्य का संचार हो गया ॥३५।

वीरव्रत की आराधना में तत्पर होकर राम के समान मुक्ति रूपी सीता से संयुक्त हो जाइ ॥३७॥

औचित्याद्युक्तशालिनीं हृदय ! रे शीलाङ्गरागोज्वलां-
श्रद्धा ध्यानविवेकमण्डनवतीङ्कारुण्यहाराङ्किताम् ।
सद्बोधाञ्जनरञ्जितीं परिलसच्चारित्रपत्रांकुरां-
निर्वाणं यदि वाञ्छसीह परमं क्षान्तिं प्रियां भावय ॥३८॥

भावार्थ—हे हृदय ! यदि तू वास्तव में निर्वाण-प्राप्ति की कामना करता है, तो औचित्य रूपी वस्त्रों से सुसज्जित शीलाङ्ग रूपी समुचित अनुराग से उज्ज्वल, श्रद्धा, ध्यान और सद् विचार रूपी आभूषणों से अलंकृत, करुणारूपी हार से सुशोभित सद्बोध रूपी अञ्जन से युक्त और सच्चारित्र रूपी पत्रांकुर से मण्डित, उत्तम क्षमा रूपी स्त्री को प्राप्त करने की भावना कर ॥३८॥

सत्यं बुद्बुदभङ्गुरं धनमिदं दीपप्रकम्पं वपु-
स्तारुण्यं तरले क्षणक्षितरलं विद्युच्चलं दोर्बलम् ।
रे रे जीव ! गुरुप्रसादवशतः किञ्चिद्विधेहि द्रुतं-
स्वात्मध्यानतपोविधानविषयं श्रेयः पवित्रं परम् ॥३९॥

भावार्थ—निस्सन्देह यह धन जल के बुद्-बुदे के समान क्षण-भंगुर है। शरीर, दीप-प्रकम्प के समान चञ्चल है। यह यौवन स्त्री के नेत्र-कटाक्ष की तरह क्षरणशील है। और यह बाहुबल चञ्चल बिजली के सदृश अस्थिर अर्थात् चलायमान है। अतः हे

चित रक्षा करते हुए गृहस्थ-धर्म को योग्य रीति से पालन करना चाहिए। हे वत्स! तू ही मेरे गृह का सुदृढ़ और सुन्दर मूल स्तंभ है। और तू ही मेरा जीवन है! हे सुमति-प्रवीण! तेरे घर में सत्कुलोत्पन्न, परम सदाचारिणी और सुपुत्र रत्न-प्रसविनी, रत्न-गर्भा वसुन्धरा के तुल्य, पतिव्रता भार्या है। अतएव, हे बेटा! तुझे फल की वाञ्छा सहित कुछ काल तक अवश्य ही गृहस्थ-धर्म का पालन करने में कटिबद्ध होना चाहिए॥४१॥

येनेह क्षणभङ्गुरेण वपुषा क्लिन्नेन सर्वात्मना-
सद्व्यापारनियोजितेन परमं निर्वाणमप्याप्यते।
प्रीतिस्तेन हहा पितः! प्रियतमा संपर्करागोद्भवा-
क्रीता स्वल्पसुखाय मूढमनसा कोट्या मया काकिणी॥४२

भावार्थ—अपने पूज्य पिता श्री टेकचन्दजी के वचनों को सुन कर श्री खूबचन्दजी उन से नम्रता पूर्वक निवेदन करने लगे, कि हे पूज्यपाद पिताजी! जिस क्षणभंगुर और घृणास्पद शरीर को अच्छे कार्य में लगाने से, मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। उसी शरीर को, स्त्रियों के सम्पर्क से उत्पन्न होने वाले, क्षणिक सुख के लिए, प्रीति का पात्र बनाना, महान् भूल करना है। और यह भूल भी कोई साधारण भूल नहीं, किंतु एक करोड़ रुपये के बदले एक कौड़ी को खरीदने वाले व्यक्ति की भूल के समान महान् भयंकर भूल है॥४२॥

आपकी सेवा में कर दिया है। अतएव अब आप जैसा भी उचित समझें, वैसी आज्ञा प्रदान करें ॥४४॥

कवलयति समग्रं वस्तुजातं कृतान्तः,
अविरतकृतयत्नः क्रूरभावोपन्नः।
क्षणमपि न कदाचित्तस्य पार्श्वं गतस्य,
भवति मनसि जन्तौ नैव कारुण्यभावः ॥४५॥

भावार्थ—क्रूर भाव से संयुक्त हो कर जब मृत्यु सब वस्तुओं का संहार करती है। तब उस समय सब प्रयत्न निष्फल हो जाते हैं। अर्थात् मृत्यु के हृदय में, किसी भी प्राणी के प्रति दया का भाव उत्पन्न नहीं होता है ॥४५॥

शरीरं ममास्तीति मत्वा विमोहात्,
प्रसक्तिं दृढांमात्र कुर्याः कदाचित्।
मृदाः निर्मिताः पौद्गलाः सर्वभावाः-
स्वतत्वेषु लीनाः भवन्ति क्षणेन ॥४६॥

भावार्थ—मोह के वशीभूत हो, 'यह शरीर मेरा है' ऐसा मान कर किसी भी व्यक्ति को अपने शरीर से प्रेम नहीं करना चाहिए। क्योंकि यह सब पौद्गलिक पदार्थ मिट्टी वगैरह पाँच तत्वों से बने हुए हैं। और क्षण-भर में अपने-अपने तत्वों में लीन हो जाते हैं ॥४६॥

तिमिरमतिनियन्त्री श्रीगुरुज्ञानगोष्टी,
भवजलनिधिनौका तत्कृपापूर्णदृष्टिः ।
विषयरतिविमुक्तिर्यत्र दानानुरक्तिः,
शमदमयमशक्तिर्मन्मथारातिभक्तिः ॥४७॥

भावार्थ—सद्गुरुओं की ज्ञान पूर्ण गोष्ठी, अज्ञानान्धकार को नष्ट कर देती है। उनकी कृपा-पूर्ण दृष्टि, संसार रूपी समुद्र के लिए नौका के समान है। विषय-प्रेम का त्याग ही दान है। शम दम एवं यमादि की शक्ति का संचय करना तथा काम-शत्रु बनना ही वास्तविक भक्ति है ॥४७॥

श्रुतिमतिबलवीर्यप्रेमरूपायुरङ्ग-
स्वजननयकान्ता भ्रातृपित्रादिसर्वम् ।
ततउगतजलं वा न स्थिरं वीक्षतेऽङ्गी,
तदपि बत विमूढो नात्मकृत्यं करोति ॥४८॥

भावार्थ—श्रवण-शक्ति, बुद्धिबल, वीर्य, प्रेम, आयु और शरीर तथा अपने बन्धु-बांधव पुत्र, स्त्री, भाई और पितादि सब. चलनी में गए हुए जल के समान, अस्थिर हैं। किंतु खेद है, कि इस बात को जानते हुए भी, यह मूढ़ आत्मा, अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता है ॥४८॥

जिनशुभपदभक्तिर्भावना जैनतत्वे,
विषयसुखविरक्तिर्मित्रता सत्ववर्गे ।

आत्मन् ! यदि तुझे प्रचुर सुखों से परिपूर्ण शिव-सुख प्राप्त करने की तीव्र उत्कण्ठा है, तो जिन-वाणी के प्रति अपनी प्रगाढ़ रुचि प्रकट करते हुए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और पाप रहित सम्यक् चारित्र इन तीनों रत्नों को सम्यक् प्रकार से धारण कर ले। क्योंकि ये तीनों रत्न रत्नत्रय-धर्म, के नाम से प्रख्यात हैं। और यह "रत्न-त्रय-धर्म" मुक्ति के लिए हेतुभूत है। और इनके विपरीत कुदर्शन कुज्ञान और कुचारित्र जो हैं, वे संसार के हेतुभूत हैं अतः उन्हें शीघ्र ही छोड़ दे ॥५२॥

रे पापिष्ठातिदुष्ट ! व्यसनगतमते ! निन्द्यकर्मप्रसक्त !
न्यायान्यानभिज्ञ ! प्रतिहतकरुण ! [illegible] !
किं किं दुःखं न यातो विषयवशगतोयेन जीवोऽधिकम्,
त्वं तेनैनौतिवर्त्मप्रसभमिहमनोजैनतत्त्वे निधेहि ॥५३॥

भावार्थ—हे पापिष्ठ जीव ! तू [illegible] कुव्यसनों के चक्कर में पड़ कर तू [illegible] रहता है। तू ने न्याय और अन्याय [illegible] है। करुणा रहित हो कर [illegible] तू ने विषयों के वशवर्ती हो कर [illegible]

दुःखों से लबा-लब भरी हुई, महान् निन्दनीय नरकादि तीर्यंच गतियों को प्राप्त होता है। और वहाँ छेदन भेदन अङ्कन और दाहन आदि महान् भयंकर दुःखों को सहन करता है। तथा वायु, आतप, अन्न और जल के रोधन एवं वधादि के द्वारा पूर्ण खेदावस्था को प्राप्त होता रहता है ॥५५॥

यत्र प्रियाप्रियवियोगसमागमान्य-
प्रेष्यत्व धान्यधनबान्धवहीनताद्यैः ।
दुःखं प्रयाति विविधं मनसाप्यसह्यं-
तं मर्त्यवासमधितिष्ठति माययाज्ञी ॥५६॥

भावार्थ—माया के वश [illegible] संयोग, धन-धान्य और बान्धवादि के [illegible] सहने के कारण महान् दुःखपूर्ण [illegible]

क्षणेन भङ्गत्वमुपागतेषु, [illegible]
संसारभोगेष्वधुना ममेदं, [illegible]

भावार्थ—[illegible]

जिनेन्द्रचन्द्रामलभक्तिभाविना.
निरस्त मिथ्यात्व मलेन देहिना ।
विधार्यते येन विशुद्धभावना-
मवाप्यते तेन विमुक्तिकामिनी ॥६०॥

भावार्थ—जो प्राणी मिथ्यात्व रूपी मैल को निवारण कर के, श्री जिनेन्द्रदेव की भक्ति में लीन रहता है। उस प्राणी के हृदय में, विशुद्ध-भावना का आविर्भाव हो जाता है। तथा उस निर्मल भावना के प्रभाव से वह मुक्ति रूपी कामिनी को प्राप्त कर लेता है ॥६०॥

दृष्ट्वा स्वीयसुतं विरागवनिता लुब्धं पिताऽवक् तदा ।
रे रे किं सुत ! वर्तते तव हृदि ब्रूहि प्रमादस्थित ?
मानुष्यं सफलं कुरुस्वरुचिरं भङ्क्त्वा गृहस्थाश्रमं,
व्यापारेऽर्जयपद्मजां प्रणयतः प्रीणीहि स्वं मातरम् ॥६१॥

भावार्थ—श्रीमान सेठ [illegible] जी को, वैराग्य रूपी वनिता पर इस [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

आदर्श चरितम्

प्रिय व्याख्यानी श्री मन्मुनि

श्री हीरालाल जी महाराज

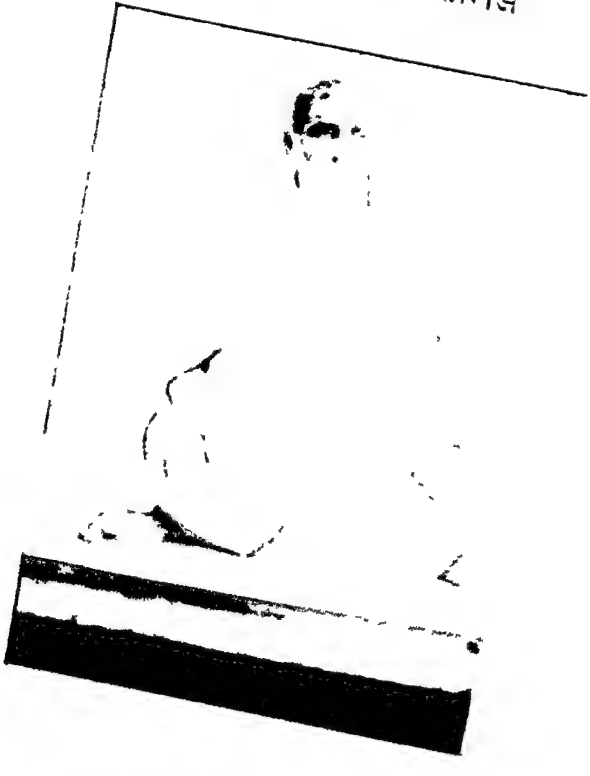

हो जाय। और दुष्ट जन भी अपनी दुष्टता को छोड कर उपकार करने लग जाय। तदपि यह सांसारिक तथा कौटुम्बिक मोह-जाल पूर्ण मोक्ष-मार्ग प्राप्त कराने के लिए कभी भी समर्थ नहीं हो सकता है ॥६३॥

मृत्युव्याघ्रभयङ्करानगतं भीतं जराव्याधत-
स्तीव्रव्याधिदुरन्तदुःखतरुमत्संसारकांतारगम् ।
कः शक्नोति शरीरिणं त्रिभुवने पातुं नितांतातुरं,
त्यक्त्वा योगधनाश्रितं गुरुवरं जैनेंद्रं वाक्यामृतम् ॥६४॥

भी स्त्री से ही उत्पन्न होते हैं। जिन के द्वारा मनुष्य एवं प्राणी मात्र के हितकारक एवं मोक्ष-मार्ग-प्रदर्शक शास्त्रों का एवं साधु-साध्वी श्रावक-श्राविका रूप चारों तीर्थों का उद्घाटन होता है। और उन धर्म-शास्त्रों तथा तीर्थों से, हमें हमारे सम्पूर्ण पाप तापों का विनाश होकर बाधा रहित सच्चे सुख की प्राप्ति होती है। इसलिये हे पुत्र! स्त्री को सच्चे सुख की देनेवाली और अच्छी समझ कर ही सज्जन पुरुष स्वीकार करते हैं ॥६७॥

सत्यं मन्त्री विपत्तौ भवति रतिविधौ दासिका या सुदक्षा,
लज्जालुः साविगीता गुरुजनविनता गेहनी गेहकृत्ये।
भक्त्या पत्यौ सखीया स्वजनपरिजने धर्मकर्मैकनिष्ठा,
गार्हस्थ्ये साल्पपुण्यैः सकलगुणनिधिः प्राप्यते स्त्री न यमर्त्यैः

भावार्थ—हे पुत्र! स्त्री आपत्ति के समय मन्त्री का काम देती है। प्रेमानुराग में चतुर दासी का-सा कार्य करती है। लज्जा और शील संयुक्त, अनिन्दित गुरुजनों की विनय-भक्ति करनेवाली, गृहकार्यों में दक्ष पति-भक्ति परायणा स्वधर्म-कर्म में चतुर तथा स्वजन परिजनों से अनुराग रखनेवाली सम्पूर्ण गुणों की खान स्त्री मनुष्यों को स्वल्प पुण्यों से प्राप्त नहीं होती है किन्तु महान पुण्योदय से ही ऐसी सर्वगुण-सम्पन्न स्त्री प्राप्त होने का सौभाग्य मिलता है ॥६८॥

लब्धा या सुप्रबन्धा परमसुखरसा कोकिलालापजल्पा,

स्मृत्वा पञ्चनमस्क्रियां शुचिमतिः श्रीमन्दसौरस्थले,
धर्मध्यानमनाऽभ्रमीद्विनयतः सज्जावरास्थानके ॥७१॥

भावार्थ—तदनन्तर हमारे चरित्रनायक, धर्म-ध्यान-परायण, वैराग्य-भावी श्री खूबचन्द्रजी ने संसार से विरक्त हो कर, शुद्ध-हृदय से पंच परमेष्ठी का स्मरण एवं ध्यान करते हुए नीमच की तरफ प्रस्थान किया। तथा वहाँ से मनासा नारायणगढ़ और मन्दसौर होते हुए जावरा पहुँचे ॥७१॥

प्राचानीन्मुनिसत्तमान् शुभकरान् श्रीरत्नचन्द्रोज्वल-
श्रीमज्जवाहरलालसौम्यचरित श्रीनन्दलालादिकान् ।
हीरालालपवित्रपादकमलं नत्वा च तत्रस्थले .
प्राश्रौषील्ललितं जिनेन्द्रचरितं व्याख्यानमुक्तिप्रदम् ॥७२॥

भावार्थ—जावरे पहुँच कर वहाँ मुनियों में श्रेष्ठ, शुभङ्कर, निर्ग्रंथ-मुनि श्री रत्नचन्द्रजी श्री जवाहरलालजी एवं सान्यचरित्री श्री नन्दलालजी तथा श्री हीरालालजी म० आदि मुनिवरों के चरण-कमलों को स्पर्श कर के नमस्कार किया। फिर उनके मुक्ति-पथ-प्रदर्शक एवं जिनेन्द्र के निर्मल चरित्र पर प्रकाश डालनेवाले ओजस्वी व्याख्यान को सुन कर फिर वहीं विश्राम किया ॥७२॥

सश्रद्धाभरभाजनं जिनपतेर्ध्यानं विधत्ते मुदा,
व्याख्यानामृतसिञ्चनेन सुधिया वैराग्यपूर्णक्रियाम् ।
अग्रेतां गजगामिनीं प्रियतमां पृष्टेऽपि तां सर्वदा,
धात्र्यां तां गगनेऽपि तां किमपरं सर्वत्रतामीक्षते ॥७३॥

भावार्थ—अब श्री रामचन्द्रजी इन निर्ग्रन्थ-मुनियों की पावन सेवा में रह कर इनके व्याख्यानामृत से अपने हृदय प्रदेश को सिंचित करने लगे। अतः इसके फलस्वरूप ये परम श्रद्धा-पूर्वक जिनेन्द्र-भक्ति-ध्यानारूढ़ होकर सुदृढ़ वैराग्य में ऐसे निमग्न हुए, कि हाथी के समान मस्त हो गये। और उन्हें आगे-पीछे पृथ्वी-मण्डल तथा आकाश-मण्डल आदि सभी स्थानों में वैराग्य-ही-वैराग्य दृष्टिगोचर होने लगा ॥७३॥

श्रद्धानाम नरस्य शक्तिरधिका श्रद्धा सुखस्पन्दिनी,
संसाराभिधकानने विचरतां सन्देहविध्वंसिनी ।
श्रद्धा सर्वभयापहातनुभृतां शान्तिप्रदा सिद्धिदा,
श्रद्धैका सकलापदां भवरुजां दिव्यौषधं कामदम् ॥७४॥

भावार्थ—श्रद्धा ही पुरुष की उत्तम शक्ति है। श्रद्धा ही कल्याण का परम सुन्दर रथ है। शुद्ध श्रद्धा के प्रभाव से ही संसार-रूपी वन में घूमनेवाले पुरुषों के सन्देहों का नाश होता है। श्रद्धा ही सब प्रकार के भयों से विमुक्त करने वाली, शरीर अपूर्व शान्ति का प्रसार करने वाली तथा सकल सिद्धि प्रदायिनी है। यह श्रद्धा, एक ऐसी दिव्य और रामबाण औषधि है, कि जिसके द्वारा भव-रोगों का शमन तथा आपत्तियों का विनाश होता है ॥७४॥

श्रद्धैषात्र प्रकर्तव्या, श्रद्धा सन्देहनाशिनी ।
श्रद्धा सौख्यकरी पुंसां, श्रद्धा मुक्तिप्रदायिनी ॥७५॥

भावार्थ—यह श्रद्धा सब प्रकार के सन्देह को नष्ट-भ्रष्ट करने वाली और सौख्य तथा मुक्ति की देने वाली है। अतः प्रत्येक पुरुष का कर्त्तव्य है, कि वह शुद्ध श्रद्धा को अपने हृदय में स्थान दें ॥७५॥

श्रुत्वा स्वीयसुतस्य साधुशरणं श्रीटेकचन्द्रोवणिक्,
वात्सल्याश्रुभृतेक्षणोभटिति सः प्रायाच्च तत्र स्थले।
नत्वा गद्गदभाषया मुनिवरान् प्रोवाचवाणीं सुत-
मीशाप्य प्रभया गृहस्थसकलं कार्यं गुणिन्! पुत्र मे ॥

भावार्थ—श्रीमान् सेठ टेकचन्द्रजी ने, जब अपने प्रिय पुत्र श्री खूबचन्द जी के सम्बन्ध में यह समाचार सुने, कि वह साधुओं की शरण में रह कर वैराग्य-भाव में रमण कर रहा है, तो उनके नेत्रों से पुत्र-वात्सल्यता के नाते प्रेमाश्रु प्रवाहित हो चले। वे तत्क्षण ही जावरा पहुँचे। और वहाँ विराजित समस्त मुनि-संघ के पावन चरणों में वन्दन करने के पश्चात् वे गद्गद् हो कर अपने पुत्र से कहने लगे, कि हे पुत्र! तू गृहस्थाश्रम का कार्य कर ॥७६॥

गार्हस्थ्यानुपदाश्रयेण लभते मुक्तिं जनः श्रद्धया,
तच्छुभ्राशययोपितोऽस्ति सुत! मे योगाश्रमं मोक्षदम्।
किं तत्वं परिदायपूर्णसुखदं योगे मतिं धीपसे,
संसारास्थितिकारणाय शुचिदां संत्राप्नुहि स्वः श्रियम् ॥

भावार्थ—शुद्ध श्रद्धा पूर्वक गृहस्थ-धर्म का समुचित रूप से

न मृत्युं स्वासन्नं व्यसनानलनिः पश्यति पुनः॥८६॥

भावार्थ – इस संसार के प्राणी मरीर, धन, मर्म आदि के लोभ के
वश हो दूसरों को मरण देखते हुए इस बात को नहीं समझते
करते जाते हैं, कि 'यह मर गया यह मर रहा है एक दूसरे मरण
को इस प्रकार देखते तथा जानते हुए भी वे अपने [illegible]
को [illegible] नहीं करते हैं कि हमें [illegible]
[illegible] इस [illegible] [illegible]
[illegible] ॥८६॥

न मृत्युं स्वासन्नं व्यपगतमतिः पश्यति पुनः॥७९॥

भावार्थ—इस संसार के प्राणी शरीर,धन,स्त्री आदि के मोह मे फस कर प्रति दिन दूसरों की तरफ देखते हुए इस बात की गणना करते रहते हैं, कि 'वह मर गया, वह मर रहा है, एवं वह मरेगा, यह सब दृश्य देखते तथा जानते हुए भी वे मन्द बुद्धि बनकर यह विचार नहीं करते हैं, कि हमारे सिर पर भी मृत्यु मँडरा रही है और हम भी एक-न-एक दिन इस कराल काल के उदर मे समा जायँगे ॥७९॥

श्रियोपायाद्यातास्तृणजलचरं जीवितमिदं,
मनश्चित्रं स्त्रीणां भुजगकुटिलं कामजसुखम् ।
क्षणध्वंसीकायः प्रकृतितरले यौवनधने,
इति ज्ञात्वा सन्तः स्थिरतरधियः श्रेयसिरताः'॥८०॥

भावार्थ—लक्ष्मी क्षण-स्थायी है। जीवन घास पर स्थित जल-बिन्दु के सदृश पल मे नष्ट होने वाला है। शरीर भी क्षण-विनाशी है। और यौवन तथा धन तो स्वभाव से ही चञ्चल है। ऐसा जान स्थिर बुद्धि वाले सज्जन अपने कल्याण मे तत्पर होते हैं ॥८०॥

अनित्यं निस्त्राणं जननमरणव्याधिकलितं,
जगन्मिथ्यापाशैरहमहमिकालिङ्गितमिदम् ।
विचिन्त्यैवं सन्तो विमलमनसो धर्ममतय-
स्तपः कर्तुं वृतास्तदपसृतये जैनमनघम् ॥८१॥

भावार्थ—यह लक्ष्मी तो केवल यहीं कुछ दिनों के लिए सुख देने वाली होती है। यह तरुणी भी केवल इस युवावस्था में ही मन-हरण करने वाली बनकर अत्यन्त प्रीति की पात्रा होती है। सांसारिक सुख बिजली के समान चंचल है। और व्याधियों से भरा हुआ यह शरीर भी चलायमान् है। ऐसा विचार कर सज्जन पुरुष सदैव ब्रह्म-अर्थात् आत्म-सुख में संलग्न हो जाते हैं ॥८३॥

न कान्ता कान्ताते विरहशिखिनो दीर्घनयना,
न कान्ता भूपश्री जलधिलहरीवत्तरलिता।
न कान्तं ग्रस्तांतं भवति च जरायौवनमतः,
श्रयन्ते ते सन्तः स्थिरसुखमयीं मुक्तिवनिताम् ॥८४॥

भावार्थ—दीर्घ नेत्र वाली स्त्री विरह के प्राप्त होने पर अग्नि के समान हो जाती है। और कष्ट से प्राप्त की गई राज्य-लक्ष्मी भी समुद्र की तरंगों के समान चंचल है। यौवनावस्था का शारीरिक सौंदर्य भी वृद्धावस्था के आगमन के कारण नष्ट-भ्रष्ट और कुरूप हो जाता है। इसलिये सत्पुरुष स्थायी सुखों से परिपूर्ण मुक्ति रूपी स्त्री को ही अपने आधीन रखते हैं ॥८४॥

वस्त्राण्यादि परेण यत्र मिलनं भूमौ च शय्या तथा,
स्कंधे पुस्तकपात्रभारकरणं पौषादिकष्टं तथा।
शीतग्रीष्मयुतेपि पादचलनं कंटादिपूर्णे पथि,
तारुण्ये तपसे दृशेन भवतात्कष्टं कथं सह्यते ॥८५॥

भावार्थ—तब उनके पिता कहने लगे, कि जिस मुनि वृत्ति मे वस्त्र भी दूसरों से उपलब्ध होते है। और पृथ्वी पर ही सोना पड़ता है। कन्धे पर पुस्तक एवं पात्रादि का भार लाद कर शीत ग्रीष्मादि के असह्य कष्टो को सहन करते हुए, कंटकाकीर्ण मार्ग मे पैदल चलना पड़ता है। यों मुनि-अवस्था के तप और त्याग के द्वारा अपने लिए तू क्यों कष्टों को आमंत्रित कर रहा है?॥८५॥

क्रोधाद्युग्रचतुष्कषायचरणोद्दामोहहस्तः पितः,
रागद्वेषनिशातदीर्घदशनोदुर्वारमारोद्धुरः ।
सज्ज्ञानांकुशकौशलेन समहा मिथ्यात्वदुष्टःद्विपः,
नीतो येन वशंवशीकृतमिदं तेनैव विश्वत्रयम् ॥८६॥

भावार्थ—तब फिर पुत्र ने पिता जी से कहा, कि हे पिता जी! क्रोधादि चार कषाय रूपी चार पैर, मोह रूपी सूँड एवं राग-द्वेष रूपी दो बड़े लम्बे-लम्बे दाँत वाला तथा प्रबल काम-विकार रूपी मदसे उन्मत्त ममता रूपी गन्ध हस्ति को, जिस पुरुष ने अपने सद् ज्ञान रूपी अकुश से वश मे कर लिया है। उसने मानो तीनों लोकों को अपने वश मे कर लिये है॥८६॥

योगे पीनपयोधराश्चिततनोर्विच्छेदने विभ्यताम्,
मानस्यावसरे चटूक्तिविधुरं दीन मुखं बिभ्रताम् ।
विश्वेपे स्मरवह्निना तु समयं दन्दह्यमानात्मनां,
रेरे सर्वदिशासु दुःखगहनं धिक्कामिनां जीवनम् ॥८७॥

नाथ ! त्वद्विरहोऽधुना हिमरुचिश्चण्डाङ्गुलक्षायते,
हेमन्तस्य हिमानलोऽपि दहनज्वालावलीलायते ॥६३॥

भावार्थ—तदनंतर सौभाग्यवती श्री साकरदेवी ने अपने पति श्री खूबचन्द जी को इस प्रकार वैराग्याल्ढ देख कर अपने अश्रुपात से चरण धोते हुए स्नेह पूर्वक कहा, कि हे नाथ ! इस समय तुम्हारे विरह से चन्द्रमा शीतल होते हुए भी सूर्य के समान उष्ण संतापकारी मालूम होता है। और हेम ऋतु की शीतल पवन भी अग्नि के समान शरीर को दग्ध करती है॥ ६३ ॥

न स्नेहः कुसुमे सुखं न भवने प्रेमा न पङ्केरुहे,
न प्रीतिः पवने रतिर्न भुवने यत्नोन वा जीवने।
चित्तं त्वद्विरहेण हन्त हरिणी रूपायते सर्वदा,
सेहम्योंऽपि यमायते विरचय च्छार्दूलविक्रीडितम् ॥६४॥

भावार्थ—इस समय मुझ को फूल के प्रति स्नेह, संसार में सुख, कमल में प्रेम, पवन में प्रीति, रस में राग, और जीवन की रक्षा के लिए प्रयत्न करना भी, अच्छा मालूम नहीं होता है। आपके विरह से यह चित्त, हिरणी के समान आचरण कर रहा है। और यह घर सिंह के रूप को धारण करता हुआ वन के समान आचरण कर रहा है॥६४॥

शश्वन्मायां करोति स्थिरमति न मनो मन्यते नोपकारं
या दाक्ष्यं वक्रयत्यत्यं मलिनयति कुलं कीर्तिवल्लीं लुनाति

सर्वारम्भैकहेतुर्विरतिसुखरतिध्वंसिनी निन्दनीया,
तां धर्मारामभङ्क्तीं भजति न मनुजो मानिनीं मान्यबुद्धिः ।

भावार्थ—तब श्री खूबचंद जी कहने लगे, कि स्त्री सदैव छल-कपट करती है। मोह-माया का जाल फैलाती है। मन को चंचल बना डालती है। और फिर यह असत्य-भाषिणी, कुलागारिणी, मोक्ष-सुख-भञ्जक, कृतघ्ना, निन्दनीय कीर्ति रूपी लता को काटने वाली, परिग्रह की मूल जड़, तथा धर्म रूपी उद्यान को नष्ट-भ्रष्ट करने वाली है। अतः समझदार व्यक्ति, स्त्री को कदापि धारण नहीं करते हैं ॥६५॥

सेवां या संविधत्ते सुखमुपचिनुते प्रीतिमाविष्करोति,
सत्पात्राहारदानप्रभववरवृषस्यास्तदोषस्य हेतुः ।
वंशाभ्युद्धारकर्तुर्भवति तनुभुवः कारणं कान्तकीर्ति-
स्तत्सर्वाभीष्टदानं प्रवदत न कथं प्रार्थ्यते स्त्रीसु रत्नम् ॥

भावार्थ—तब उनकी स्त्री उन से कहने लगी, कि प्राणनाथ ! स्त्री, सेवा-धर्म बजाने वाली सुख, का सचय करने वाली, प्रीति को प्रकट करने वाली तथा सत्पात्र-मुनि आदि को आहार-दान द्वारा उत्पन्न पुण्य की कारण होती है। और संतानोत्पत्ति द्वारा वंश की अभिवृद्धि का कारण होती है। स्त्री पति के लिये कीर्ति स्वरूप है। अतः हे नाथ ! आप इस प्रकार के सब सम्पूर्ण अभीष्ट को सिद्ध करने वाले स्त्री-रत्न को क्यों नहीं चाहते हैं ?॥६६॥

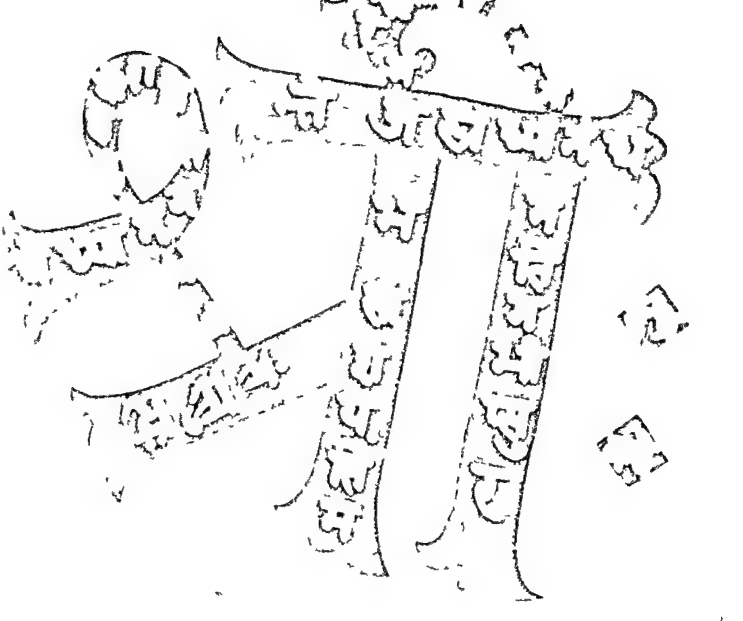

हुए गुरु की सेवा करनेवाले और काम-सेवन के लिए विकल न रहने वाले व्यक्ति का गार्हस्थ्य जीवन ही अत्यन्त सुख का देने वाला है ॥१००॥

भवन्तः सद्योगप्रणिहितधियामत्रगुरवो,
विदग्धालापानामहमपि पदाब्जाश्रितशरणा ।
यथाप्येतत्स्वामिन्नहि परहितात्पुण्यमधिकम,
तवास्मिन्संसारे कुवलयदृशः सौख्यमधिकम् ॥१०१॥

भावार्थ—हे स्वामिन् ! यद्यपि आप आत्म-ध्यान मे लीन सद्गुरुओं के चरण-कमल की सेवा करते हुए उनके दिव्य उपदेश की प्राप्ति द्वारा बड़े भारी पुण्य का संचय कर रहे हो। और इस संसार मे परोपकार से बढ़कर अन्य कोई पुण्य नहीं है। यह बात बिलकुल सत्य है। किन्तु संसार म स्त्रियों से जो सुख प्राप्त होता है उससे अधिक सुख भी कोई नहीं हो सकता है ॥१०१॥

त्वगस्थिरुधिरामिषैः प्रचुरगूथमूत्रादिकैः,
भृतां जगति वेदितां सकलदोषसीमां स्त्रियम् ।
अनङ्गशरजर्जरीकृतकलेवरे कातरो-
नरो जडमतिर्मुहुःप्रियतमेति संभाषते ॥१०२॥

भावार्थ—तब हमारे चरित्रनायक श्री खूबचन्द्र जी ने कहा, कि छिः ! छिः ! चमड़ी, हड्डी, रुधिर, मांस, विष्ठा और मूत्रादि से भरी हुई सकल दोष की खान स्त्री को काम स्वरूप बाण से

वैराग्य के पूर्ण भाव जागृत हो गये। वे संसार की असारता की तरफ दृष्टिपात करते हुए तनिक विचार कर कहने लगे, कि पूर्वोपार्जित कर्मों के वश प्राणी संसार मे भ्रमण करता हुआ अनेक प्रकार के मल से परिपूर्ण, कृमि-कुल से व्याप्त, नाना भाँति की व्याधियों के मंदिर, व्यसन-ग्रसित, स्त्री के गर्भ मे निवास करता है। और अनेक दुःखों को प्राप्त करता है ॥ १०४ ॥ सासांरिक प्राणी सरागी अर्थात मोह के वशीभूत होकर. संसार मे भ्रमण करता हुआ, भव-संतति के कारण दुष्कर्मों का उपार्जन करता है। और प्रचुर सुख की इच्छा करता हुआ, दुखो से पूर्ण अनेक दोषो के भवन शरीर को धारण करके संसार मे भ्रमण करता फिरता है। विचारने की बात है, कि प्रारम्भ मे ही माता के गर्भ मे इसको क्या सुख मिला ? बाल्यावस्था मे गर्भ मे केवल अपवित्र मलादि भक्षण किया। और काम-व्यसन-पीडित युवावस्था मे इसे क्या हर्ष प्राप्त हुआ ? फिर इसी प्रकार अङ्गो को शिथिल करने वाली वृद्धावस्था मे कष्ट के सिवाय और क्या सुख मिला ? ॥१०५–१०६॥ इस रस-हीन संसार मे, स्त्री भोग-विलास मे, अन्य-जन के संगम में, क्षण-स्थायी धन के संचय एवं विनाश मे, और विनाशशील पुत्र-पौत्रादिक संतति के दर्शन मे, ऐसा कौन सा सुख है? कि जिसके कारण मूर्ख व्यक्ति माया-जाल मे पँस कर बँध जाता है। यह स्व-जन, परिजन, पुत्र, माता और स्त्री मय विचित्र इन्द्रजाल. संसार मे न जाने किसने बना दिया है! वास्तव

मुख का ग्रास बनने वाला है। अतः इस व्याकुलता से सुरक्षित रहने के लिए मैंने ऐसे साधुओं की शरण ग्रहण की है, कि जो प्रेम पूर्वक सांसारिक जन्म-मृत्यु की पीड़ा को नष्ट करने वाले हैं ॥११३॥

लक्ष्मीं लावण्ययुतां पुरुषो हृष्यति यथा मुदा दृष्ट्वा ।
एवं हृदि निवसन्तं ध्यात्वा जिनमिह भवेद्बुधो मुदितः

भावार्थ—जिस प्रकार लावण्यवती स्त्री को देख कर तरुण पुरुष प्रसन्न होता है, उसी प्रकार अपने शुद्ध हृदय द्वारा ध्यानस्थ होकर श्री जिनेश्वर भगवान के वास्तविक स्वरूप के दर्शन करते हुए विद्वान पुरुष प्रसन्न होते हैं ॥११४॥

वायुना चाल्यमानस्य स्थैर्यं दीपस्य दुर्लभम् ।
एवं वैराग्यहीनस्य दृढभक्तिरपोहिता ॥११५॥
न वैराग्याद्विना मुक्तिर्भक्तियोगः कदाचन ।
विषयैर्भ्राम्यमाणस्य मनसः स्थिरता कथम् ॥११६॥

भावार्थ—जिस प्रकार पवन के प्रबल थपेड़ों से चलायमान (बुझने वाला) दीपक स्थिर होना दुर्लभ है। उसी प्रकार वैराग्य-हीन व्यक्तियों के हृदय में भक्ति भाव की दृढ़ता का संचार होना भी दुर्लभ है ॥११५॥ वैराग्य के अभाव में भक्ति ध्यान, तप और मुक्ति आदि कुछ भी प्राप्त नहीं होता है। रात-दिन विषय-वासनाओं में भ्रमण करनेवाले व्यक्तियों के मन की स्थिरता वैराग्य के किसी भी प्रकार नहीं हो सकती है ॥११६॥

यावत्सा प्रियभाषिणी स्मितमुखी मर्तुः प्रमोदप्रदा,
यावन्नो ग्रसते करालवदना क्रूरा जरा राक्षसी।
सौभाग्यानुगुणं सदा गतभयं पीयूषपूर्णं परं,
कर्तव्यं जिनदेवतामुदितं मोक्षाय पूर्णं तपः ॥११२॥
मृत्युव्याघ्रभयङ्करानगतं भीतं जगं व्याघ्रत-
स्तीव्रव्याधिदुरन्तदुःखतरुमन्संसारकान्तारगम्।
देहं मे श्रृणु सुन्दरि! व्यसनजं पातुं नितान्तातुरम्,
प्रेम्णाहं वरिताऽस्मि साधुशरणं संसारजन्मार्तिहम् ॥११॥

भावार्थ--यदि चंचल नेत्र वाली स्त्रियाँ वृद्धा न हो राजाओं की सम्पत्ति भी बिजली के समान क्षणभंगुर न हो, तथा वायु की प्रबल लहर के समान यह जीवन चञ्चल न हो, तो फिर किसी भी प्राणी के लिए इन सामारिक सुखों से विमुख हो कर जिनदेव द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों के पालन करने की कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाती है। जब तक भयंकर मुखवाली क्रूर वृद्धावस्था रूपी राक्षसी मनुष्य को ग्रसित नहीं करती, तब तक श्रेष्ट पुरुषों का कर्त्तव्य है, कि वे जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रतिपादित पुण्योदय के सूचक, भव-भय-संहारक, पियूष-धारा के समान सरस सुखप्रद तप-त्याग-विधान की आराधना द्वारा मोक्ष-धाम को प्राप्त करें।१११-११२॥ हे सुन्दरी! तीव्र व्याधि और दुःख रूपी वृक्षों से आच्छादित इस संसार रूपी वन में भटकता हुआ यह मेरा शरीर वृद्धावस्था रूपी व्याघ्र से भयभीत हो रहा है। और मृत्यु रूपी सिंह के

रज्यद्रिम्बाधरश्रीपिशितसबलितं रोमराजावसूत्रम्,
भ्रूवल्लिक्षेपकालायसबडिशमिदं तत्कटाक्षोपकण्ठम् ।
अस्यां संसारनद्यां विमरणनिकृतको निर्दयोऽयं कृतान्त-
स्तद्ग्रासोल्लासधारां परिहरत परं भ्रातरो लोकमीनाः ॥
नाहं कस्यापि कश्चिन्न च मम ममता नाशमूलं किलैत-
न्नित्यं चित्ते ध्रियध्वं यदि जगदखिलं नाममिथ्येति बुद्धिः।
एतस्याहं समैतद्यदि मनसि तदा जन्मकर्माद्रियध्वम्.
मन्यध्वं गर्भचर्मा वृत्तिमभयपदं किन्तु पुण्यं कुरुध्वम् ॥

भावार्थ—इस संसार रूपी नदी मे, यह मृत्यु रूपी निर्दयी धीवर, स्त्री के मांस संयुक्त रक्तवर्ण वाले अधर स्वरूपी फल को, भृकुटियों के कटाक्ष रूपी काँटों से संयुक्त, रोमावली रूपी भयंकर कन्टकाकीर्ण जाल मे डाल कर इन प्राणी रूपी मछली को प्रलोभन मे डालता है। और जब यह प्राणी रूपी मछली उस जाल मे फँस जाती है। तब मृत्यु रूपी धीवर उसे पकड़ कर काल का ग्रास बना लेता है ॥१७॥ इस संसार मे न तो मैं ही किसी का हो सका हूँ, और न मेरा ही कोई हो सका है। यह चित्त में धारण की हुई मोह और ममता ही मेरा और तेरा भाव उत्पन्न कराती है। इस भयङ्कर जन्म-मरण के दुःख को देनेवाले एवं संसार में जीव को भ्रमण करानेवाले मोह को छोड़ कर जन्म और मरण के भय से रहित कर्म का विनाश करके आनन्द-पूर्ण चिन्मय मुक्ति की प्राप्ति का उपाय करना ही श्रेयस्कर है ॥१८॥

पितृभ्रातृसपिण्डबान्धवगणप्रौढप्रभावाग्रणीः-
प्रारावद्द्रुतमिष्टयोगनिपुणः प्रायात्पुरे व्यावरे।
श्रीसिद्धार्थनरेशवंशसरसीजन्माब्जिनीवल्लभ-
ध्यानेनानयत्स्वकीयसमयं मुक्तिश्रियं वेदिनम् ॥११९॥
किं लोलाक्षिकटाक्षलम्पटतया किं स्तम्भजृम्भादिभिः-
किं प्रत्यङ्गनिदर्शनोत्सुकतया किं प्रोलसच्चाटुभिः।
आत्मानं प्रतिबाधसे त्वमधुना व्यर्थं मदर्थं यतः-
शुद्धध्यानमहारसायनरसे लीनं मदीयं मनः ॥१२०॥

भावार्थ—हमारे चरित्रनायक प्रौढ प्रभावशाली श्री खूबचन्द्र-जी अपने पिता भाई आदि सम्बन्धी-जनों के करुणा-जनक वाक्यों को सुन कर भी अपने संकल्प पर दृढ रहे। और वे वहाँ से शीघ्र ही व्यावर चले गये। वहाँ पर वे वीर प्रभु के ध्यान में अपने समय को व्यतीत करने लगे। यों श्री महावीर प्रभु के ध्यान में निमग्न होकर वे अब तृष्णा के प्रति कहने लगे कि हे तृष्णे! तू चपल नेत्र-कटाक्ष वाली हाव-भाव करनेवाली, हास्य क्रीडा करनेवाली स्त्री के अङ्गोपाङ्गादि के दर्शन की उत्सुकता से मेरे मन और आत्मा को क्यों जाल में फँसाना चाहती है। मैं अब तेरे जाल में फँसनेवाला नहीं हूँ। क्योंकि अब मेरा मन रूपी भ्रमर प्रभु के चरणरूपी कमलों में गुञ्जार कर रहा है ॥११९-१२०॥

सज्ज्ञानमूलशाली दर्शनशाखश्च येन वृत्ततनः।
श्रद्धाजलेन सिक्तो मुक्तिफलं तस्य ददातीह ॥१२१॥

भावार्थ—सद्ज्ञान रूपी जड से सयुक्त, सद्बुद्धि रूपी शाखा वाले, सच्चरित्र रूपी कल्प-वृक्ष को, जो पुरुष श्रद्धा रूपी जल से सिंचित करते है। वे पुरुष उस कल्प-वृक्ष द्वारा मुक्ति रूपी फल को अवश्य ही प्राप्त करते है ॥१२१॥

यद्गार्हस्थ्यकुलोचितं सुवसनं हित्वा स्थितिं स्थानके,
कृत्वार्हत्पदचिन्तनं मुनिजनं ध्यात्वा विदित्वागमम् ।
न ज्ञानामृतमन्थनेन हृदयाम्भोधिर्दृढोमथ्यते,
यावत्तावदियं न मुक्तिरमणी केनाप्यहो लभ्यते ॥१२२॥
स्वाध्यायोत्तमगीतिसङ्गतिजुषः सन्तोषपुष्पान्विताः-
सम्यग्ज्ञानविलासमण्डपगताः सद्ध्यानशय्याश्रिताः ।
तत्वार्थप्रतिबोधदीपकलिकाः क्षान्त्यङ्गनासङ्गिनो,
निर्वाणैकसुखाभिलाषिमनसो धन्या नयन्ते निशाम् ॥
ये जल्पन्ति व्यसनविमुखां भारतीमस्तदोषाम्,
ये श्रीनीतिद्युतिमतिधृतिप्रीतिशान्तीर्दधन्ते ।
येभ्यः कीर्तिर्विलसितमला जायते जन्मभाजाम्
शश्वत्सन्तः कलिलहतये ते नरेणात्र सेव्याः ॥१२४॥

भावार्थ—अब श्री खूबचन्द्रजी, अपने गार्हस्थ्य-जीवन-सम्बन्धी वस्त्रो को परित्याग करके साधु-वस्त्र धारण कर पौषध-शाला मे रहने लगे। वहाँ प्रतिदिन वे जिनेन्द्र भगवान् के चरण-कमलो मे भक्ति-पूर्वक ध्यान लगाए रहते। और निर्ग्रन्थ-मुनि जनो की वन्दना तथा सेवा-सुश्रूषा करते हुए निरन्तर इस बात का

चिंतन करते रहते, कि जब तक मैं ज्ञान रूपी रई (बिलौवनी) द्वारा हृदय रूपी समुद्र का मन्थन भली प्रकार से नहीं कर लूँगा तब तक मुझ को मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकेगी ॥१२२॥ और जो पुरुष स्वाध्याय रूपी उत्तम गान से प्रमुदित हैं, सन्तोष रूपी पुष्पों से पूजित हैं सम्यक् ज्ञान रूपी मण्डप में विलास करनेवाले हैं। सद्ध्यान रूपी शय्या पर स्थित होकर तत्वज्ञान रूपी दीपक के प्रकाश द्वारा शांति रूपी सुन्दर-पथ पर चलने वाले हैं। तथा निर्वाण रूपी अनुपम सुख की अभिलाषा में ही लीन हो कर, अपनी रात्रियों को आनन्द से व्यतीत करते हैं। वे पुरुष वास्तव में साधु पुरुष हैं। और अनेकानेक धन्यवाद के पात्र हैं। अतः हे जीव अब तुझे भी ऐसे ही सन्त पुरुषों की सेवा में लीन हो जाना चाहिए, कि जो कष्ट नाशक पवित्र जिनोक्त वाणी का सेवन करते हैं। तथा जो [illegible] नीति, सम्पत्ति, कान्ति, मति [illegible] [illegible] के प्रदाता हैं। तथा जिनके प्रताप से प्राणियों [illegible] [illegible] हैं। और जो पाप के [illegible] हैं ॥[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

मातः पश्य विमूढतां मम हहा नष्टं मया चेन्मुधा,
कामक्रोधकुबोधमत्सरकुधी माया महामोहतः ॥१३१॥

भावार्थ—जब उनकी माता ने उनके शुभागमन का सम्वाद सुना, तो वह पुत्र-प्रेम में विभोर होकर तत्काल दाढ़ी-दाढ़ी उपाश्रय में उपस्थित हुई। और अपने पुत्र श्री खवचन्द्र जी से कहने लगी कि हे पुत्र! घर को चल। और वहां नाना प्रकार के घृतपूर्ण स्वादिष्ट मिष्टान्नादि का भोग करके कीर्ति पूर्वक लक्ष्मी का अर्जन करते हुए गार्हस्थ्य-धर्म का पालन कर। तब हमारे चरित्रनायक श्री खवचन्द्रजी ने अपनी माता से विनय पूर्वक निवेदन किया, कि हे माता! स्थानक (उपाश्रय) में निवास करनेवाले व्यक्तियों के लिए गृहस्थ के घर भोजन करना किस प्रकार उचित हो सकता है? अब तो मैं वैराग्य वृत्ति में रहने के कारण साधु हूँ। अतः अब आपके घर तो मैं केवल साधुओंके अनुकूल भिक्षान्न और गर्म जल आदि को लेने के लिए ही आ सकता हूँ। यदि साधु-वृत्ति को अंगीकार करके फिर भी पुरुष ने खाने-पीने की लोलुपता को नहीं छोड़ा और सिद्धान्त रूपी औषधि से अपने हृदय को शुद्ध विशुद्ध नहीं किया तो उसका जन्म ही व्यर्थ है। अनादि अनंत संसार में, मिथ्यात्व की संगति के कारण, यह प्राणी, उन्माद रूपी भयंकर आँधी के द्वारा गिरता-पड़ता हुआ, अत्युग्र भ्रम रूपी मुद्गर की असह्य चोटों से मूर्छित हो रहा है। अतः माया रूपी लोहे की मजबूत शृङ्खलाओं से बद्ध,

मातः पश्य [illegible]

कामक्रोधकुबोध [illegible]

भावार्थ—[illegible]

सुन, तो वह पुत्र-प्रेम [illegible]

मे उपस्थित हुई। और [illegible] ने लगी

कि हे पुत्र! घर [illegible] घृतपूर्ण

स्वादिष्ट मिष्टान्न [illegible] का अर्जन

करते हुए [illegible] तब हमारे [illegible]

श्री [illegible] निवेदन किया, कि

हे माता! [illegible] व्यक्तियों के लिए

गृहस्थ के घर भोजन [illegible] हो सकता है?

अब तो मैं वैराग्य वृत्ति में रहने के [illegible] हूँ। अतः अब

आपके घर तो मैं केवल साधुओं के अनुकूल [illegible] और गर्म जल

आदि को लेने के लिए ही आ सकता हूँ। यदि साधु-वृत्ति को

[illegible]गीकार करके फिर भी [illegible] खाने-पीने की लोलुपता को

[illegible] छोड़ा और सिद्धान्त रूपी औषधि से अपने हृदय को शुद्ध

विशुद्ध नहीं किया तो उसका जन्म ही व्यर्थ है। अनादि, अनंत

संसार में, मिथ्यात्व की संगति के कारण, यह प्राणी, उन्माद [illegible]

[illegible] आँधी के द्वारा गिरता-पड़ता हुआ, अत्युग्र [illegible]

मुद्गर की असह्य चोटों से मूर्छित हो रहा

। अतः माया रूपी लोहे की मजबूत शृंखलाओं से [illegible]

प्रेरित हो पिता जी से कहा कि पिता जी ! जन्म-मरण और जरा आदि के दुःखों से व्याप्त यह सारा संसार मुझे अत्यन्त भयानक प्रतीत हो रहा है। अतएव आप मुझ को इस अथाह संसार-सागर से पार लगा दीजिए। क्योंकि पिता अपनी सन्तान के लिए सदैव सुख के साधन एकत्रित कर देते हैं। मेरे दीक्षा ग्रहण करने से आपके वंश की कीर्ति होगी।

मातृभ्रातृकुटुम्बवर्गभगिनी तातस्वकीयाङ्गना,
दीक्षाज्ञां परिलभ्य योगिनपुणोऽदाशिष्टवासादिकान्।
पश्चान्नीमचमागमद्यतिवरं श्रीनन्दलालाभिधम्,
दीक्षामर्जयितुं मुनिं सुमनसा नत्वा तथा प्रार्थयत् ॥१३६॥

भावार्थ—अब योग-निष्ट श्री नूवचन्द्रजी ने अपने भाई, माता बहिन आदि कुटुम्बी वर्ग की आज्ञा प्राप्त कर के वहाँ से प्रस्थान किया। और नीमच पहुँच कर सर्व प्रथम वहाँ विराजित मुनिवर श्री नंदलालजी महाराज के चरण-कमल में वन्दना करके दीक्षा-प्रदान करने के लिए प्रार्थना की ॥१३६॥

ही स्वयं साधु-वेष पहन लिया है. अतएव अब मुझे अश्वारोहण की कोई आवश्यकता नहीं है। दक्षार्थी जी के इस वक्तव्य को सुन कर श्री संघ ने अनेक प्रकार के सुन्दर वाद्य और सुमधुर गीतों के द्वारा इस मङ्गलमय महोत्सव को सानंद सम्पादित किया ॥१३७॥ अब हमारे चरित्रनायकजी निर्ग्रंथ दीक्षा से दीक्षित हुए। अर्थात् अब उन्होंने पाँच महाव्रत, पाँच-समिति और तीन गुप्तियों को धारण करते हुए मुनि-पद को स्वीकार किया। और अपने पूज्य गुरुदेव की सेवा में रह कर नित्यप्रति विनय-भक्ति पूर्वक पठन-पाठन में दत्तचित्त हुए। थोड़े ही दिनों में वे मुनि-पदोचित विविध गुणों से विभूषित हुए। तीव्र-तप-विधान के द्वारा अपनी आत्मा को विशुद्ध किया और अपने कुशाग्र बुद्धि बल द्वारा शास्त्राध्ययन किया ॥१३८॥

वर्षे पक्षाजुनन्दध्रुवपरिमितसद्विक्रमीये तृतीया.
तिथ्यामाषाढमासे शशधरदिवसे कृष्णपक्षे तथा च।
प्राज्यप्रौढप्रमादप्रतिभरनिधनप्राप्तदीक्षाप्रतापः.
प्रोच्चैः प्रीतिं प्रयाति प्रतिकलममलां प्राणिनां प्रेक्षमाणः

भावार्थ—इस प्रकार विक्रम संवत् १९५२ के आषाढ़ शुक्ला ३ सोमवार को हमारे चरित्रनायक श्री खूबचंद्रजी ने दीक्षा ग्रहण की। और काम-क्रोधादि कषायों पर विजय प्राप्त करके अपनी आत्मा का सर्वोच्च कल्याण करने के लिए समुद्यत हुए ॥१३९॥

कट्यां चौलपटं तनौ सितपटं कृत्वा शिरोलुञ्चनम्.
हस्ते पात्रमथोरजोहरणकं निक्षिप्य कक्षान्तरे।

बद्ध्वा सम्मुखवस्त्रिकां शुचितरामाकाशगङ्गासमाम्
वैराग्याम्बुजिनीप्रबोधनपटुः प्रध्वस्तदोषाकरः ॥१४०॥
प्रारम्भिष्टसुवेदितुं च विविधां वैकालमूलादिकम,
ठाणाङ्गं समवांगमिष्टफलदं प्राधीत्य तत्रान्तरे ।
सर्वार्हन्मतशास्त्रपारमगमच्छ्रीखूबचन्द्रो मुनिः,
जातोऽन्यागमदर्शनोत्सुकमना मुक्तिश्रियं वेदितम् ॥
चातुर्मासमनेष्टशुद्धचरितः श्रीनन्दलालं गुरुम्,
सद्भक्त्या परिसेव्य प्रोदयपुरे मेवाडदेशान्तरे ।
जैनस्थानकवासिशास्त्रनिपुणः सम्यग्दशा सद्गुणी,
लीलाभङ्गमहारिभिन्नमदनं तापाय हृद्या परम् ॥१४२॥

भावार्थ--उन्होने अपने शरीर पर शुद्ध श्वेत वस्त्र धारण किये। मुँह पर मुख-वस्त्रिका बाँधी। कटि पर चोलपट्टा, हाथ मे पात्र और बगल मे रजोहरण ग्रहण किया। अब वे अपने मुँह पर बँधी हुई आकाश-गङ्गा की शोभा को धारण करनेवाली स्वच्छ श्वेत मुख-वस्त्रिका तथा केश-लुञ्चित मस्तक द्वारा, ऐसे सुशोभित हो रहे थे, मानो वैराग्य रूपी सरोवर के कमल को प्रफुल्लित करने वाले एक देदीप्यमान सूर्य है। उन्होने क्रमश. दशवैकालिक आदि जैन तत्व-प्रदर्शक शास्त्रो का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन एवं मनन किया। यों काम-शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हुए अपने पूज्य गुरुदेव की सेवा मे रह कर उन्होने अपना प्रारम्भिक चातुर्मास उदयपुर मे व्यतीत किया ॥१४०-१४१-१४२॥

तत्पश्चान्मुनिसत्तमः समगमच्छ्रीखाचरोदस्थले,
देवीलालयतीश्वरेण सहसा व्याख्याद्वितीयाब्धिके ।
मेवाडे पृथुसादडीं स्वगुरुणा सार्द्धं समायात्तदा,
व्याख्यानामृतसिञ्चार्द्रमनसा श्रोतॄन् समासीषधत् ॥१४३॥
तुर्येब्दे समशिश्रियद्गुरुवरं सत्स्थानके नीमचे
नीत्वा माणिकचन्द्रयोगनिपुणं श्रीमन्दसौरेऽगमत् ।
एवं पर्यटनेऽवयिष्टमुदतः श्रीजावरास्थाके,
विख्यातार्हद्भक्तिभावितः सच्छ्रेणिकक्ष्मापवत् ॥१४४॥

भावार्थ—आपने अपना द्वितीय चातुर्मास संवत् १९५३ में सुप्रसिद्ध भजनानंदी मुनि श्री देवीलालजी महाराज के साथ खाचरोद में किया। और फिर तीसरा चातुर्मास संवत् १९५४ में आपने अपने गुरुजी के साथ रह कर बड़ी सादड़ी में किया। वहाँ की जनता आपके व्याख्यानों से बड़ी ही प्रभावित हुई ॥१४३॥ चौथा चातुर्मास भी संवत् १९५५ में आपने अपने गुरुजी के ही चरण कमल में रह कर नीमच शहर में व्यतीत किया। तत्पश्चात् संवत् १९५६ में पाँचवाँ चातुर्मास तपस्वी मुनि श्री माणिकचन्दजी म० के साथ मन्दसौर में किया। आपके आत्म-ज्ञान गर्भित उपदेशों से मन्दसौर की जनता का ध्यान आत्म-कल्याण की ओर आकर्षित हुआ। इस प्रकार जनता को सन्मार्ग की ओर लगाते हुए आपका शुभागमन जावरा नगर में हुआ ॥१४४॥

यो निर्गर्वो विधियति हितं गर्हते नापवादम्,
सत्पुन्नागः सततसुखदः पुण्यवान् भाति लोके ॥१४७॥

भावार्थ—जो मनुष्य श्रीमान् पन्नालाल जी के समान कृपा एवं करुणा पूर्ण हृदय से परहित-व्रत को धारण करते हैं। तथा जो छल-कपट अभिमान, और परनिंदा आदि पापों से रहित होकर धर्म-बुद्धि को ग्रहण करते हैं। वे पुण्यवान प्राणी वास्तव में पुरुष-शिरोमणि होकर लोक में शोभा के पात्र बनते हैं ॥१४७॥

हीरालालकविः कलासु निपुणोव्याख्यानदक्षःसुधीः,
शश्वद्योगपथानुगाः सहृदयाः श्रीखूबचन्द्रादयः।
श्रुत्वा श्रीमुनिखूबचन्द्रशुभदं व्याख्यानमाजिज्ञपत्,
मिथ्येदं सुखलाल उच्चमनिभृः संसारमायाजलम् ॥१४८

भावार्थ—सौभाग्य से एक बार उसी जीरण नामक ग्राम में कविवर मुनि श्री हीरालालजी म० एवं हमारे चरित्रनायक योग-निष्ठ धैर्यवान मुनि श्री खूबचन्द्रजी म० आदि मुनियों का शुभागमन हुआ। चरित्रनायक मुनि श्री जी के ओजस्वी व्याख्यान को सुन कर के बालक सुखलालजी को वैराग्य उत्पन्न हो गया। और उन्हें यह संसार मिथ्या भासित होने लगा ॥१४८॥

इमां प्रवृत्तिं सुखलालबालपितृस्वसाऽरुहनिजात्मजेन।
श्रीकासवागोत्रजधर्मचेता भवानिगमोऽज्ञपयत्ततस्ताम् १४९॥

भावार्थ—बालरत्न श्री सुखलालजी की इस वैराग्य वृत्ति में, उनकी भुआ ने अपने पुत्र द्वारा रोड़ा अटकाया। तथा :

उर्दू आदि भाषाओं का तथा जैन सूत्रों का ज्ञान प्राप्त कर लिया ॥१५१-१५२॥

गुरुप्रसादोदकसिक्तबुद्धिलताकवित्वं फलमासविष्ठ ।
यदीयसत्काव्यसुधाप्रवाहो देव्यागिरांलातिकला विलासम्

भावार्थ—गुरु की प्रसन्नता रूपी जल-धारा से सिञ्चित मुनि श्री सुखलाल जी महाराज की बुद्धि रूपी लता से कविता रूपी फल उत्पन्न हुआ। उस कवितारूपी फल की अमृतधारा का प्रवाह फिर ऐसा प्रवाहित होने लगा कि जो सरस्वती की वाणी के विलास को [illegible] कर रहा है ॥१५३॥

सुखयमनिधिभूमिवत्सरे जीरणाख्ये,
समनयतसुभावैः शुभ्रचातुः समासम् ।
अनुपमगुणराशिः शीलचारित्रभूषः-
प्रगदति जिनवाण्या सर्वकल्याणमूलम् ॥[illegible]॥
हरति जननदुःखं मुक्तिसौख्यं विधत्ते,
रचयति शुभबुद्धिं पापबुद्धिं धुनीते ।
अवति सकलजन्तून् कर्मशत्रून्निहन्ति
प्रशमयति च नो यो जैनधर्मं दधाति ॥१५[illegible]॥

[illegible]

से जैन धर्म, जो कि जन्म-मरण के दुःखों का अन्त करने वाला और मुक्ति के अक्षय सुखों का प्रदाता है। और जो सद् बुद्धि प्रदायक पाप-बुद्धि प्रभंजक, सकल प्राणियों का रक्षक और कर्म शत्रुओं का विध्वंसक है। ऐसे परम पवित्र जैन धर्म का खूब ही प्रबल प्रचार हुआ। और जनता के हृदयों में अनेकानेक शुभ भावनाओं की जागृति हुई ॥१५४-१५५॥

ग्रहशिक्षमुखनन्दक्षमापुरीमुज्जयन्तीम्,
समगमदुपदेशैः कर्मनिर्मूलनाय ।
वदति वचनमुच्चैर्दुःसहं कर्कशादि-
कलुषविदलतायां तां क्षमां श्लाघते सः ॥१५६॥

भावार्थ—आपने संवत् १६५६ का चातुर्मास उज्जैन में किया। वहाँ पर आपने जगत्-जनता के कर्मों को निर्मूल करने के लिए प्रतिदिन धारावाही सदुपदेश प्रदान किया। क्षमा की व्याख्या और प्रशंसा करते हुए आपने घोषित किया, कि दुःखदायी कठोर वचनों को सहन करना ही क्षमा है। क्षमा बड़ा ही परम पवित्र और प्रशंसनीय गुण है ॥१५६॥

पञ्चदिनोपवासैस्त्रैव मूलान पुनश्च जाता ।
शस्त्रं कृतपूर्वकर्मसामर्थ्यच्छेदे भवतीति भूमौ ॥

भावार्थ—इस चातुर्मास में आपने पाँच दिन का अनशन । जिसके प्रभाव से आपकी तिल्ली समूल नष्ट हो गई ।

और फिर उत्पन्न होने का उसका साहस ही नहीं हुआ। तब आपने जनता को उपदेश दिया, कि इस संसार में पूर्व कृत कर्मों के छेदन-भेदन का एक मात्र अमोघ शस्त्र तप ही है ॥१५७॥

गगनरसनिधिज्यानग्गढे माण्डलाख्ये,
प्रचुरमनुजसंख्याऽपिप्रियत्पञ्चरङ्गीम्।
अमृतमथनसिक्ता धर्मभावप्रसक्ता,
शपथमवृणुतामी प्रावितुं जीवहिंसाम् ॥१५८॥

भावार्थ—आपने विक्रम संवत् १९६० का चातुर्मास [illegible] तलहटी में समाप्त किया। वहाँ पर [illegible] घर होते हुए भी तपस्या की चार पंचरंगियाँ हुईं। [illegible] प्रभावशाली उपदेशों से प्रभावित होकर [illegible] ने मांस-भक्षण का परित्याग किया और [illegible] न करने की [illegible] प्रतिज्ञा धारण की ॥१५८॥

किमिह परमसौख्यं निरपृहत्वं यदेतत्,
किमथ परमदुःखं सस्पृहत्वं यदेतत्
इति मनसि विधाय [illegible]
[illegible]

[illegible]

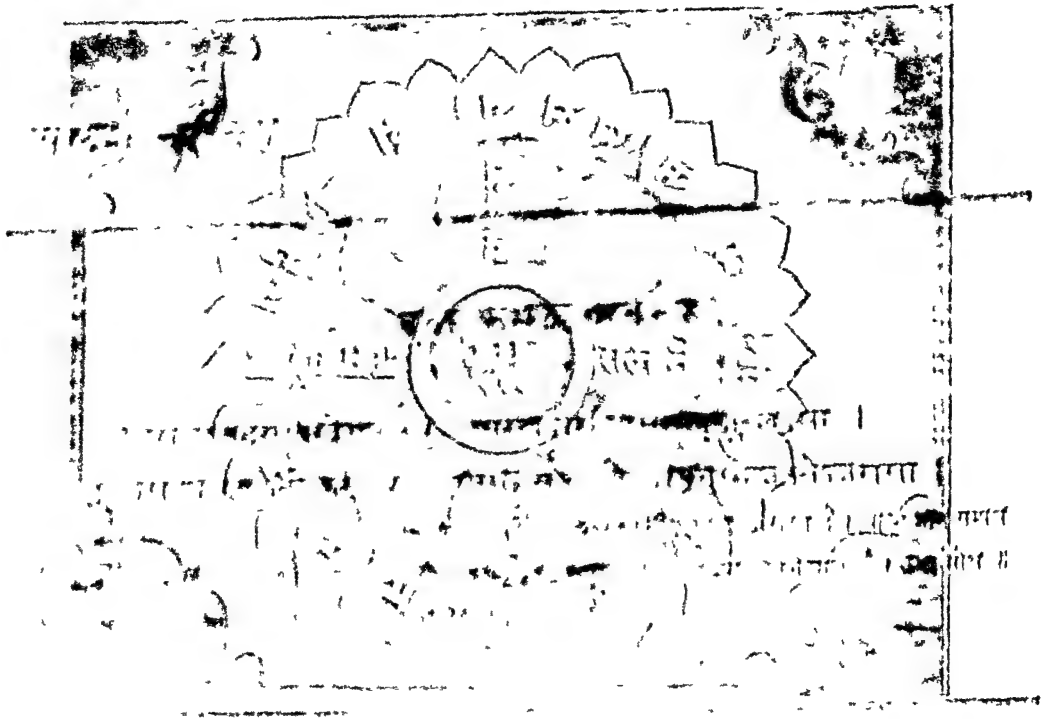

Calcutta Art Pre... Delhi

विद्वद्वृन्दमनः सरोजमकरोद्वाक्यामृतैः फुल्लितम् ।
श्रीमत्स्थानकवासिधर्मतिलकोवादीभपञ्चाननः,
प्रारफूर्जज्जिनचारुधर्मविजयश्रीर्वैजयन्तीं तदा ॥२०५॥
मालव्यं शुभमेदपाटनिगमं पातुं मरालां ययौ,
बोधित्वा शुचिकाण्डसाजनपदं सौनां नवग्राहिकाम् ।
एवं व्हादरपुःस्थितान् जिनगमान् सूक्तैः सुधास्यन्दिभिः,
कामक्रोधमदादिकैश्च रहितः प्रायाद्यतीशाग्रणीः ॥२०६॥

भावार्थ—फिर संवत १९६६ का चातुर्मास श्री संघ के अत्याग्रह से आपने देहली मे किया। वहाँ पर चरित्रनायकजी निष्काम होते हुए भी मुक्ति कामिनी के इच्छुक बने रहे। तथा सत्यारोपित मन वाले होते हुए भी आपने अपने को सत्यावादी की उपमा से प्रसिद्ध करवाने योग्य नहीं समझा। इसी प्रकार पूजनीय होते हुए भी आपको अपनी स्तुति अप्रिय मालूम होती थी। यों आप देहली मे उत्तरोत्तर अधिकाधि शोभा को प्राप्त होने लगे ॥२०४॥ वहाँ पर आपने अपने मुख-चन्द्र से वाक्य रूपी चन्द्रिका को छिटका कर विद्वानो के हृदय रूपी कुमोदिनी को विकसित किया। यों स्थानकवासी समाज के मुकुट मणि, वादी रूपी हाथियों के समूह के गजराज हाथी के समान मुनि सुखचन्द्रजी महाराज ने जैन धर्म की ध्वजा को फहराया॥२०५॥ प्रकार काम-क्रोधादि से रहित होकर आपने देहली का [illegible] पूर्ण किया। और फिर वहाँ से महरौली, भादसा, सोना,

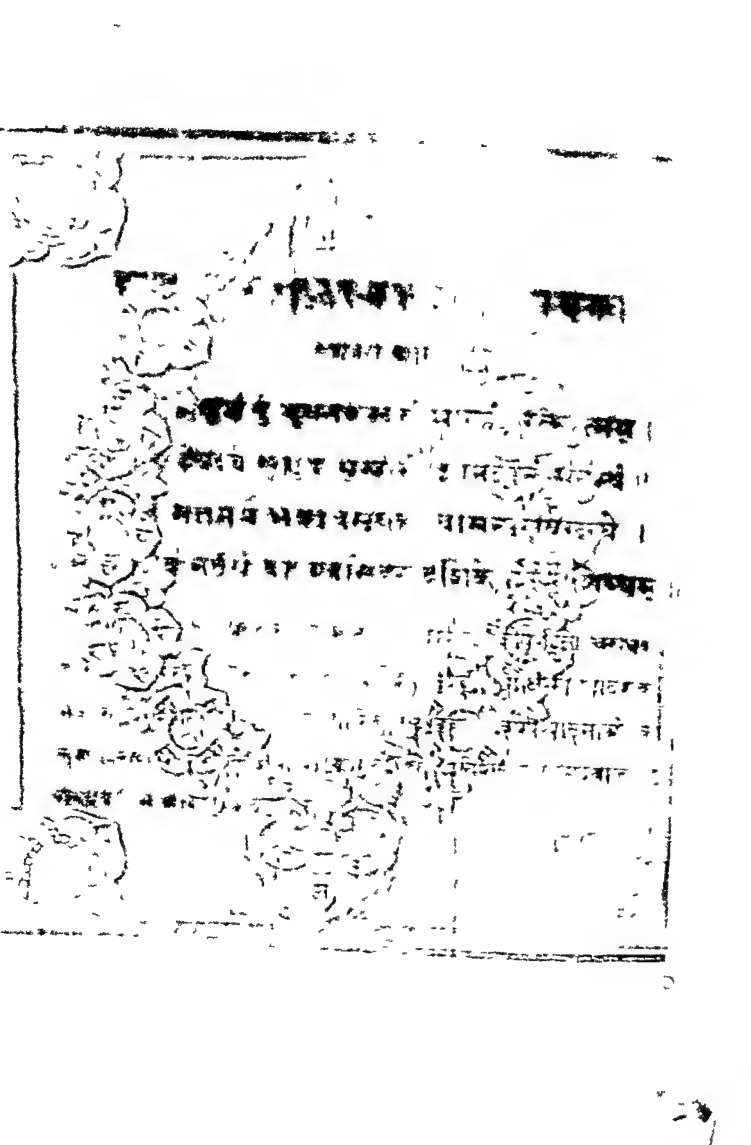

विद्वद्वृन्दमनः [illegible]

[illegible]

प्रास्फूर्जज्जिनचारु [illegible]

मालव्यं शुभमेदपा[illegible]

बोधि[illegible]

एवं [illegible] आस्यन्दिभिः,

कामक्रो[illegible] ॥२०६॥

[illegible]

अत[illegible]

निष्काम होते [illegible] श्री [illegible]

[illegible]

सत्यारोपित मन वाले होते हुए भी [illegible]

[illegible]

की उपमा से प्रसिद्ध करना योग्य नहीं समझा। [illegible]

होते हुए भी [illegible]

[illegible]

लो [illegible] पर, [illegible] मुनि-चन्द्र [illegible]

चन्द्रिका [illegible] विद्वानों [illegible] कुमोदिनी [illegible]

विकसित किया। यों स्थानकवासी समाज [illegible]

चर्चावादी रूपी हस्तियों के समूह में ऐरावत हाथी के समान मुनि श्री खूबचन्द्रजी महाराज ने जैन धर्म की ध्वजा को फहराया॥२०५॥

[illegible] प्रकार काम-क्रोधादि से रहित होकर आपने देहली का चतुर्मास पूर्ण किया। और फिर वहाँ से महरौली, झाड़सा, सोना,

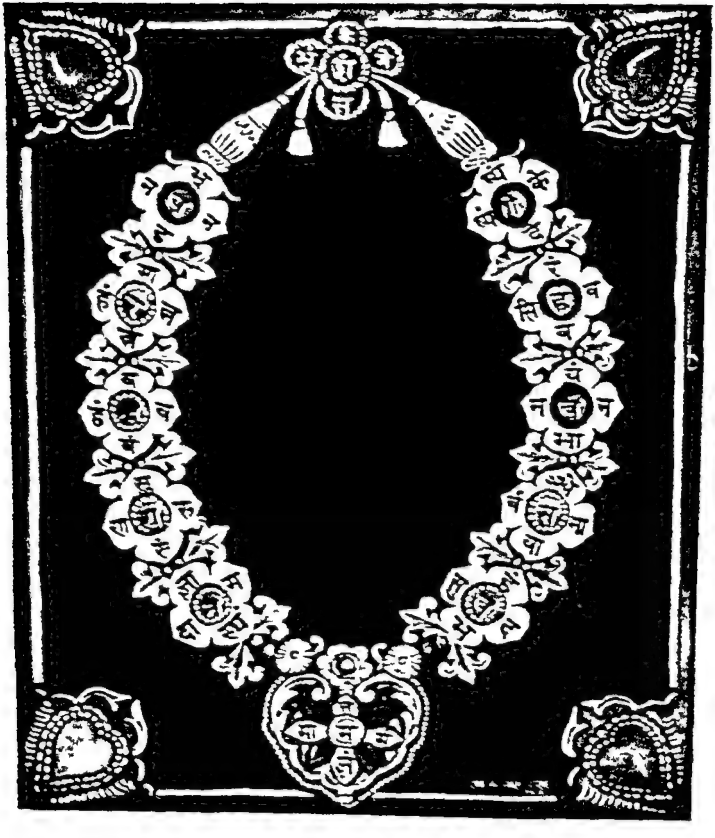

Calcutta Art Press Delhi

[illegible] तथा बहादुरपुर आदि गाँवों मे जैन धर्म का प्रचार करते आपने मालवा और मेवाड़ की तरफ विहार किया ॥२०६॥

अलवरपुरजैनं सम्प्रदायं स्वकीयम्,
जिनविभुमुखवाचाऽपिप्रयच्छोतृवृन्दम् ।
सकलजिनपतिभ्यः पावनेभ्योविनुत्य,
मुनिपतिरवितुं योऽक्रंस्तधर्मप्रभावम् ॥२०७

भावार्थ—विहार करते हुए आपका शुभागमन अलवर नगर [illegible]। आपके पावन दर्शनों से अलवर के जैन-समाज के [illegible] नर-नारियों का हृदय-सागर आनंद की तरंगों से [illegible] पड़ा। वहाँ से फिर आपने अपने परम पूज्य तीर्थंकरों को [illegible] करके धर्म-प्रभावना के लिए आगे को प्रस्थान किया ॥२०७

[illegible]जैनधर्मनितरान् संतुष्यहर्षान्वितः,
[illegible]जयपूःस्थले सममिलत्तत्र स्थितं योगिनम् ।
[illegible]प्रणयेन शुभ्रविनयाचार्यं सुचन्द्रान्वितम्,
[illegible]भूषणञ्च शिवजीरामञ्च संवेगिनम् ॥२०८॥

भावार्थ—ढूँढार देश-निवासी जैन धर्मावलम्बियों को [illegible] हुए आपने जयपुर की भूमि को पावन किया। [illegible] पर श्री मज्जैनाचार्य श्री विनयचन्द्रजी म० विराजमान [illegible] आपने उनके दर्शन किये। वे भी चरित्रनायकजी से [illegible] प्रसन्न हुए इसी प्रकार जैन श्वेताम्बर [illegible] शिवजीरामजी भी उस समय वहीं पर [illegible] वे भी आप से मिल कर परम प्रसन्न हुए ॥२०८

———

[illegible] तथा बहादुरपुर आदि गाँवों मे जैन धर्म का प्रचार करते [illegible] आपने मालवा और मेवाड़ की तरफ विहार किया ॥२०६॥

अलवरपुरजैनं सम्प्रदायं स्वकीयम्,
जिनविभुमुखवाचाऽपिप्रयच्छ्रोतृवृन्दम् ।
सकलजिनपतिभ्यः पावनेभ्योविनुत्य,
मुनिपतिरवितुं योऽक्रंस्तधर्मप्रभावम् ॥२०७

भावार्थ—विहार करते हुए आपका शुभागमन अलवर नगर [illegible] आ। आपके पावन दर्शनों से अलवर के जैन-समाज के [illegible] वृद्ध नर-नारियों का हृदय-सागर आनंद की तरंगों से [illegible] पड़ा। वहाँ से फिर आपने अपने परम पूज्य तीर्थंकरों को [illegible] करके धर्म-प्रभावना के लिए आगे को प्रस्थान किया ॥२०७

[illegible]स्थितजैनधर्मनितरान् संतुष्यहर्षान्वितः,
[illegible]च्छीजयपूःस्थले सममिलत्तत्र स्थितं योगिनम् ।
[illegible]प्रणयेन शुभ्रविनयाचार्यं सुचन्द्रान्वितम्,
[illegible] प्रज्ञावभूषणञ्च शिवजीरामञ्च संवेगिनम् ॥२०८॥

भावार्थ—ढूँढार देश-निवासी जैन धर्मावलम्बियों [illegible] [illegible] हुए आपने जयपुर की भूमि को पावन किया। [illegible] [illegible] श्री मज्जैनाचार्य श्री विनयचन्द्रजी म० [illegible] [illegible] आपने उनके दर्शन किये। वे भी [illegible] [illegible] प्रसन्न हुए इसी प्रकार जैन [illegible] [illegible] [illegible] शिवजीरामजी भी [illegible] [illegible] [illegible] आप से मिल कर परम [illegible] [illegible]

मालवा और मेवाड़ में धर्म-प्रचार

ततोऽयं योगीन्द्रः किशनगढ़मायात्सपदि तत्,
स्थलात्सङ्घस्नेहैरजयमरुमैद्धर्मनिवहः ।
स्मरक्रोधाद्यारीन् दलय कलय प्राणिषु दयाम्,
तदादेच्यत्सङ्घं भयहरजिनेन्द्रोक्तवचनैः ॥२०६॥
नमीराबादात्सः विजयगरे शास्त्रनिपुणः,
समायाद्यत्रासन् मुनिवरयुताः पण्डितवराः ।
बुधाः देवीलालाः वृषजिनवृषादेशनपराः,
तदा तत्वं जैनं जिनमतगतांश्चेतरजनान् ॥२१०॥
दिशन्नेकं मासं स्थितिमकृतरम्यां मुनिवरो-
भिणायं तस्माच्च प्रमुदितमना धर्ममवृधत् ।

क्रमाज्जैनक्षेत्रे सततमुपदेशामृतजलैः
समारुक्षद्धर्मक्षितिरुहमुदग्रं फलयुतम् ॥२११॥

भावार्थ—जयपुर से किशनगढ़ होते हुए, आपने अजमेर श्री संघ के आग्रह से प्रेरित हो कर, अजर-अमर-पुरी अजमेर की भूमि को पावन किया। वहाँ पर आपने जन्म-मृत्यु के भय को निवारण करने वाली श्री जिनेन्द्रवाणी के अनुसार काम-क्रोधादि रिपुओं पर विजय प्राप्त करके प्राणी मात्र पर दया करने का उपदेश दिया ॥२०६॥ वहाँ से नसीराबाद होते हुए विजयनगर पधारे। वहाँ पर पण्डित-रत्न मुनि श्री देवीलाल जी म० अपने शिष्य-मण्डल सहित विराजमान् थे। आपने भी वहाँ एक मास ठहर कर जैन तथा जनेतरों को अपने ज्ञानामृत से तृप्त किये। फिर वहाँ से भिणाय पधारे। और वहाँ की जनता को उपदेश प्रदान किया। यों जिन धर्म-क्षेत्र में जिन धर्म रूपी कल्पवृक्ष को उपदेश रूपी जल द्वारा सिंचित करके उसे फल से परिपूर्ण बनाया ॥२१०-२११॥

पश्चाद्धांधनवाडाञ्च रूपाहेलीञ्च लाम्बिकाम् ।
माण्डलां भीलवाडाञ्च समागीद्धर्मबोधकः ॥२१२॥
श्रुत्वा ज्वाहरलालस्य नन्दलालादिभिः सह ।
स्थितिं निम्बडाग्रामेऽयात्तदा गुरुर्मोक्षितुम् ॥२१३॥

भावार्थ—भिणाय से विहार करके आपने क्रमशः बान्दनवाड़ा

रूपाहेली, लाम्बिया, माँडल और भीलवाड़ा नामक क्षेत्रों को पावन किया ॥२१२॥ वहाँ आपको यह हर्ष समाचार प्राप्त हुए,कि "पूज्य श्री जवाहिरलाल जी म.०, स्थविर-पद-विभूपित, शास्त्र-विशारद, पूज्य गुरुदेव मुनि श्री नन्दलाल जी महाराज आदि मुनिवरों सहित निम्बाहेड़ा मे विराजमान् है।" इस शुभ समाचार को पाकर आप अपने पाँच शिष्यों सहित उनके दर्शनार्थ निम्बाहेड़ा की ओर पधारे ॥२१३॥

मुनीन्द्रसांसारिकपितृभक्त्या निम्बाहडासङ्घशुभाग्रहेण।
नभोश्वखण्डार्त्तिसंमितेऽब्दे व्यातीचतुर्मासमुदग्रयोगी।

भावार्थ—अपनी जन्म-भूमि निम्बाहेड़ा मे पहुँच कर विक्रम सम्वत १९७० का चातुर्मास आपने अपने सांसारिक पिता जी और श्री संघ के विशेष आग्रह से तथा गुरु जी की आज्ञा से प्रेरित हो कर, वहीं पर किया ॥२१४॥

चातुर्मासमवीभसज्जिनगिरा हित्वा च निम्बाहड़ाम्,
पर्याटीद्विविधस्थलेषु समयाच्छ्रीमन्दसौरे पुरे।
तत्स्थाने मुनिसत्तमाः समभुवन् तत्वज्ञविद्याप्रभ,
श्रीमज्जवाहरलालजित्सुचरितः कल्याणकन्दान्वुदः ॥२१५
चञ्चच्छारदचन्द्रचारुवदन श्रेयोविनिर्यद्वचो,
वादीन्द्रद्विपकेशरीशुचिमतिः श्रीनन्दलालोगुरुः।
एवं सत्कविताप्रसूनसुरभिप्रीतोमुनीन्द्रस्तथा,

हीरालालकवीश्वरः प्रणयधीर्वैराग्यरङ्गान्वितः ॥२१६॥
रत्नोज्ज्वाहरलालजीप्रवयसाऽस्थालीच्च तत्र स्थले,
एतर्थीमुनिनन्दलाल इति यः शिष्यैर्गणैर्जावराम् ।
कोटां तोयधिमासमर्चनविधौ श्रीखूबचन्द्रोमुनिः.
प्रायात्स्वीयगुरुर्निदेशवचनैर्ज्याऽङ्काङ्कभूवत्सरे ॥२१७

भावार्थ—आपने संवत १९७० का चातुर्मास निम्बाहेड़ा में व्यतीत करके गुरुवर्य श्री जवाहिरलालजी म० वादी-मान-मर्दक विद्वान पं० मुनि श्री नंदलाल जी महाराज, और कविता-कुसुम सौरभ द्वारा सुरभित कवि श्री हीरालालजी म० आदि मुनियों तथा अपने शिष्यों सहित विहार करते हुए मन्दसौर में पदार्पण किया। श्री जवाहिरलाल जी म० नो वृद्धावस्था के कारण मन्दसौर ही में ठहर गये। किंतु मुनि श्री नन्दलालजी म० अपने शिष्यों सहित जावरा पधारे। फिर कोटा संघ के अत्याग्रह से तथा गुरुजी की आज्ञा से प्रेरित होकर मुनि श्री खूबचन्दजी म० संवत १९७१ का चातुर्मास करने के लिए कोटा पधारे ॥२१५-२१६-२१७॥

क्रोधादिरूपमभितुं गुरुपादपद्मं
जैनेतराः सुमनुजाः शुचिभक्तिभावैः ।
अस्तादिपुः नमवनीतकृपया मुनीन्द्रः
दुर्वान्ति ये भुवि नृणां पतनं शृणुध्वम् ॥२१८
दैवे शुनोति विधुनोति मनि स्वरेन.

स्तेयं तनोति भजते वनितां परस्य ।
गृह्णाति दुःखजननं धनमुग्रदोषं,
लोभग्रहस्य वशवर्तितया मनुष्यः ॥२२४॥
निःशेषलोकवनदाहविधौ समर्थं,
लोभानलं निखिलतापकरं ज्वलन्तम् ।
ज्ञानाम्बुवाहजनितेन विवेकजीवाः,
सन्तोषदिव्यसलिलेन शमं नयन्ते ॥२२५॥
यां छेदभेददमनाङ्कनदाहदोह-
वातातपान्नजलरोधवधादिदोषाम्,
मायावशेनमनुजोजननिन्दनीयां,
तिर्यग्गतिं व्रजति तामतिदुःखरूपाम् ॥२२६॥
यत्र प्रियाप्रियवियोगसमागमान्य-
प्रेष्यत्वधान्यधनबान्धवहीनताद्यैः ।
दुःखं प्रयाति विविधं मनसाप्यसह्यं,
तं मर्त्यवासमधितिष्ठति माययाङ्गी ॥२२७॥
कोपादिकान् रिपुगणान्गुरुबोधशास्त्रै-
र्धर्माभिमर्दसुपटे विनिहत्य मत्वः ।
ज्ञानह्येन तरतीह भवार्णवं सः
वीरप्रभूतपरम पदमालिनाति ॥२२८॥

भावार्थ—क्रोधादि कषायों के निवारणार्थ जैन तथा जैनेतर जनता ने, मुनि श्री खूबचन्द्रजी म० से उपदेश प्रदान करने के लिए प्रार्थना की। तब मुनि श्री ने मनुष्यों को अधोगति में ले जाने वाले क्रोधादि कषायों का वर्णन इस प्रकार प्रारम्भ किया ॥२११॥ क्रोध धैर्य को नष्ट कर डालता है। क्षण-भर में बुद्धिको बिगाड़ देता है। अपने आपे को भुला देता है। शरीर को शिथिल कर देता है। धर्म को ध्वंस कर देता है। क्रोध में वाच्य और अवाच्य का विचार नहीं रहता. क्रोध एक प्रकार की मदिरा का मद है ॥२१२॥ क्रोधी मनुष्य की भृकुटि सदैव चढ़ी रहती है। मुखाकृति भयंकर स्वरूप धारण कर लेती है। नेत्र लाल-लाल हो जाते हैं। वह अपने प्रकम्पित शरीर द्वारा दाँत पीसता हुआ लोक-निन्दा का पात्र बनता है। इस प्रकार क्रोधी मनुष्य एक राक्षस के समान त्रासदायक मालूम पड़ने लगता है ॥२२०॥ क्रोध, मैत्री-भावना को नष्ट-भ्रष्ट करके वैर-भावना को उत्पन्न करने वाला तथा घृणित विचारों का प्रचारक है। क्रोध, मनुष्य को कष्ट में डाल कर उसके वास्तविक स्वरूप को विकृत कर डालता है। तथा कीर्ति को भी नष्ट कर डालता है। क्रोध के समान इस संसार में दूसरा कोई शत्रु नहीं है ॥२२१॥ लोभ के वशीभूत होकर न की आशा से प्राणी भूमि को खोदते हैं। पर्वत की धातुओं को फूँकते हैं। राजाओं के आगे दौड़ते हैं। अनेक देशों की खाक छानते फिरते हैं। किंतु उन्हें पुण्य के बिना, कहीं पर भी सन्तोष

प्राप्त नहीं होता है ॥२२२॥ लोभी पुरुष के लक्षण यह हैं, कि वे व्याकुल जीव निन्दित वेष को धारण करके धनिक पुरुषों की सेवा में रहते हैं। और दीनता पूर्वक उनकी चाटुकारी करते हैं, कि हे स्वामिन! आप सद् बुद्धि को प्राप्त हों। आप चिरकाल तक जीवित रहें और आनन्द को प्राप्त हों। इत्यादि ॥२२३॥ लोभ के आधीन होकर, यह प्राणी अनेक प्रकार के जीवों का घात करता है। असत्य-भाषण, चोरी, और पर-स्त्री-सेवन करता है। तथा प्राणनाशक दुःख के उत्पन्न करने वाले धन को ग्रहण करता है ॥२२४॥ विचारशील पुरुष इस लोभ रूपी अग्नि को जो कि सम्पूर्ण लोक रूपी वन को दग्ध करने में समर्थ है। तथा जो मद को जला देने वाली है अपने ज्ञान रूपी बादल द्वारा संतोष रूपी दिव्य जल की वर्षा से बुझाते हैं ॥२२५॥ माया के आधीन होकर यह जीव छेदन भेदन अंकन दाहन, बात, घर और अन्नाभाव आदि अनेक कष्टों को प्रदान करने वाली पशु गति को प्राप्त करता है ॥ २२६ ॥ माया के कारण मर्त्य लोक में भी प्रिय वियोग, अप्रिय-संयोग तृष्णा तथा धन-धान्य का अभाव आदि अनेक असह्य दुःख प्राप्त होते हैं ॥ २२७ ॥ जो मनुष्य गुरु बोध रूपी अस्त्र-शस्त्रों द्वारा सुसज्जित होकर धर्म रूपी रण-क्षेत्र में क्रोधादि शत्रुओं को पराजित करके ज्ञान रूपी नौका से संसार रूपी समुद्र को पार करते हैं। वे ही मनुष्य वीर प्रभु द्वारा भाषित परम पद मोक्ष के प्राप्त होते हैं ॥२२८॥

निपतितो वदने धरणीतले, वमति सर्वजनेन विनिन्द्यते ।
श्वशिशुभिर्वदनं परिचुम्ब्यते, वनसुरासुरतस्य विमृज्यते ॥
भवति मद्यदृशेन मनोभवः, सकलदोषकरोऽत्र शरीरिणः ।
भजति तेन विकारमनेकधा, गुणयुतेन सुरा परिहीयते
पिबति यो मदिरा मधलोलुपः श्रयति दुर्गतिदुःखमसौजनः
इति विचिन्त्य महामतयस्त्रिधा परिहरन्ति सदा मदिरामम् ।

भावार्थ—मदिरा पीने वाला मनुष्य, पृथ्वी पर गिर कर अंट-संट बकवाद करता हुआ वमन करता है। अतः जगत-जनता द्वारा वह निंदा का पात्र होता है। कुत्ते उसके मुख को चाटते हैं। और अपने अपवित्र मूत्र द्वारा उसको प्रज्वालित करते हैं ॥२२८॥ मदिरा-पान से कामदेव की उत्पत्ति होती है। और शरीर-धारियों के लिए यह कामदेव सब प्रकार के दोषों की जड़ है। क्योंकि इसी से शरीर में नाना प्रकार के विकार उत्पन्न होते हैं। गुणवान् मनुष्य, मदिरा-पान को त्याज्य समझते हैं ॥२२९॥ जो मनुष्य मद्य पीते हैं, वे दुर्गति के महान् भयंकर दुखों के अधिकारी होते हैं। इसलिए विचारशील व्यक्ति मदिरा को कभी नहीं पीते हैं ॥२३१॥

मांसाशनाज्जीववधानुमोदस्ततो भवेत्पापमनन्तमुग्रम् ।
ततोव्रजेद् गतिमुग्रदोषां मत्वेति मांसं परिवर्जनीयम् ॥२३२
मांसाशिनो नास्तिदयासुभाजांदयां विनानाप्निजनस्य पुण्यम्
विना याति दुरन्तदुःखं संसारकान्तारमलभ्य पारम्

मांसाशने मोदति मांसभक्षी जानाति नो कर्मविचित्रभावम्
अश्नाम्यहं प्राणिनमद्यमोदैः कालान्तरेऽशिष्यति जीवमांसः

भावार्थ--जो जीव माँस-भक्षण करने में आनन्द मानते हैं। वे महान् पाप सम्पादन करते हैं! और अन्त में नरक गति में जाकर अनन्त दुःखों को प्राप्त करते हैं। ऐसा समझ कर माँस का भक्षण कभी नहीं करना चाहिए॥२३२॥ माँस-भक्षियों के हृदयों में तनिक भी दया-भाव उत्पन्न नहीं होता है। और दया के बिना पुण्य की प्राप्ति नहीं होती। पुण्य के बिना यह जीव इस संसार रूपी भीषण वन में भ्रमण करता हुआ भयानक दुःखों का शिकार होता है। माँस-भक्षी जीव माँस-भक्षण के समय महान आनन्द मानता है। किन्तु कर्म की विचित्र गति को वह नहीं जानता है कि आज मैं जिन को आनन्द पूर्वक भक्षण कर रहा हूँ। कालान्तर में वेही मुझ को भक्षण करेंगे। माँस शब्द का व्युत्पत्यर्थ है माँ अर्थात् 'मुझ को' और स' अर्थात् 'वह'। तात्पर्य इसका यह है कि जिस प्राणी के माँस को आज मैं खा रहा हूँ, कालान्तर में वही प्राणी मुझ को भी खावेगा॥२३४॥

यानी कानिचिदनर्थवीचिके, जन्मसागरजले निमज्जताम्।
सन्ति दुःखनिलयानि देहिनां, तानि चाक्षरमणेन निश्चितम्
सत्यशौचशमशर्मवर्जिता, धर्मकामधनतो बहिष्कृताः।

द्यूतदोषमतिनापि चेतनाः कं न दोषमुपचिन्वते जनाः॥२३६
साधुबन्धुपितृमातृसज्जनान्मन्यते न तनुते मलंकुले।
द्यूतरोपितमनानिरस्तधीःशुभवासमुपयान्यमौ यतः ॥२३७॥
द्यूतनाशितसमस्त भूतिको, बम्भ्रमीति सकलां भुवंनरः।
जीर्णवस्त्रकृतदेहसंहतिर्मस्तकाहितकरः क्षुधातुरः ॥२३८॥
याचते पटति याति दीनतां,लज्जते न कुरुते विडम्बनाम्।
सेवते नमति याति दासतां,द्यूतसेवनपरोनरोऽधमः ॥२३९॥
शीलवृत्तगुणधर्मरक्षणं, स्वर्गमोक्षसुखदानपेशलम्।
बुधताचरणं न तत्यतः सेव्यते सकलदोषकारणम् ॥२४०॥

भावार्थ—अनर्थरूपी लहरों से व्याप्त, संसार-समुद्र के जल में डूबते हुए प्राणियों को जो भी दुःख प्राप्त होते हैं। वे सब जुआ खेलने से मिलते हैं। यह ध्रुव सत्य है ॥२३५॥ जुआरियों को सज्जन, बन्धु, माता, पिता, आदि किसी भी व्यक्ति की प्रतिष्ठा का ख्याल नहीं रहता है। वे अपने उज्वल वंश पर कलंक का टीका चढ़ाते हैं। उनकी सत्यता, पवित्रता, शान्ति और सुख प्रायः नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। द्यूत-क्रीड़ा-जनित, दूषित बुद्धि के उनका धन,धर्म और बुद्धि विलुप्त हो जाती है। इस प्रकार बुध-विहीन होकर जुआरी लोग किस दोष को प्राप्त नहीं करते ? अर्थात सब ही प्रकार के दोष उनके हृदय मे निवास कर हैं। और अन्त मे वे बुद्धि रहित नरक गति का प्राप्त करके

दुःख भोगते रहते हैं ॥२३६-२३७॥ जुआरी लोग जुआ में अपनी समस्त सम्पत्ति नष्ट करके संसार में दर-दर के भिखारी होकर इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं। फिर वे बुभुक्षित फटे वस्त्र धारण करते हुए, सिर पर हाथ धर कर, रोते और पछताते हैं ॥२३८॥ जुआरी पुरुष नीचवृत्ति द्वारा उदर-पूर्ति करते हैं। अर्थात् वे नीच व्यक्तियों की सेवा करते हैं, उनके हाथ जोड़ते हैं, उनके साथ-साथ फिर कर उनसे भीख माँगते हैं। और यहाँ तक, कि वे दास-वृत्ति को भी धारण कर लेते हैं। इस प्रकार उनके हृदय से लज्जा पलायन हो जाती है। और वे महान विडम्बना को प्राप्त होते हैं ॥२३९॥ शील व्रत, गुण और धर्म आदि जो कि स्वर्ग और मोक्ष आदि अखण्ड सुख के देने वाले हैं। उनकी रक्षा के लिए पुरुष को सकल दोष के मूल कारण जुआ का सदा सर्वदा के लिए परित्याग कर देना चाहिए ॥२४०॥

द्यूतेन लः कौरवपाण्डवाश्च, परस्त्रिया रावण उग्रभागी।
मद्येन सर्वे यदुवंशजाताः याताः क्षयं वंकनृपश्च मासः॥
गुरूपदेशामृतसिक्तचित्ताः द्यूतं सुरामामिषभक्षणञ्च।
संतत्यजुश्चैव तमाखुपत्रमप्यन्त्यजाः पालकनापिताश्च॥२४२

भावार्थ—[illegible]

प्राप्तश्छीगुरुदर्शनाय तदपि स्वर्गं गुरुः प्रागमत्,
षष्ट्यां कार्तिकमासिके सितततौ शुक्रे च मध्याह्निके ॥२४५

भावार्थ—अजमेर चातुर्मास के लिए विहार करते समय, आपने अपने शिष्य-मण्डल सहित रुग्ण-शय्या-शायी मुनि श्री गुलाबचन्द जी महाराज को औषधोपचार द्वारा स्वास्थ्य-लाभ प्रदान किया। उसी वर्ष चातुर्मास में मुनि श्री जवाहिरलालजी म. का स्वास्थ्य मन्दसौर में अत्यन्त खराब हो गया। अतः उन्होंने दीपमालिका के दिन संथारा (अनशन व्रत) धारण कर लिया। इस समाचार को पाकर, हमारे चरित्रनायक धैर्यवान् मुनि श्री खूबचन्द्रजी म० ने, चातुर्मास में ही श्री स्थानाङ्ग सूत्र के पाँचवे स्थान के द्वितीय उद्देशानुसार, गुरुवर्य श्री जी के दर्शनार्थ, मन्दसौर की तरफ प्रस्थान कर दिया। परन्तु गुरुवर्य श्री जवाहिरलालजीम. का देहावसान तो कार्तिक शुक्ला ६ शुक्रवार के दिन ही हो चुका था।

स्वर्गावासमसमाचारं निजगुरोः श्रीभालवाडापुरे,
श्रुत्वोवासदिनानि खेदसहितः प्रायात्तु चित्तोडकम् ।
तस्माच्छीयुतदेविलालमुनिना कृत्वा विहारं पुनः,
संप्राप्योदयकं पुरश्च मुनिना प्रायात्पुनः व्यावरम् ॥२४६

भावार्थ—गुरुवर्य श्री जी के स्वर्गवास के समाचार हमारे चरित्रनायक जी को मार्ग में अर्थात् भीलवाड़ा में ही प्राप्त हो गये। तब आपने खेद पूर्वक प्रस्थान किया। उस देश में गुरुदेव की

अन्तिम सेवा भी सम्पादन नहीं कर सका । आप कुछ दिन भीलवाड़ा मे ही ठहरे । और फिर कुछ ही दिनों के पश्चात चित्तौड़गढ़ की तर्क विहार किया । फिर वहाँ से पंडित मुनि श्री देवीलालजी म० के साथ ही साथ उदयपुर नगर की भूमि को पावन करते हुए, आपने व्यावर नगर मे पदार्पण किया ॥२४६॥

नेत्राश्वाङ्क महीमिते मुनिवरः श्रीनन्दलालादयः,
पुण्ये जोधपुरे तदा समभवन् सप्तोत्तराविंशतिः ।
धन्वस्थोगुणघोटकाङ्ककुमिते वर्षादिनानाङ्कृते,
प्रार्थाये शुभसादडीजनवहः श्रीनन्दलालं ययौ ॥२४७॥
वैहव्यं वितनं तदा समभवत् संस्थानके वासिनाम्,
जैननानां जिनमन्दिरं सुमहतां येनावरोधः पथि ।
साधूनां गमनं तदा न सहसा कष्टं समीक्ष्याजनि,
वैमंवाद्युतेऽपि तत्र समये श्रीखूबचन्द्रं मुनिम् ॥२४८॥
नेतुं मामचतुष्टयं गुरुवरः प्रेम्णेव शान्तेः निधिम,
त्यक्त्वा तं मुनिपं यतो नहिपरः साधुस्तदा सोऽभवत् ।
यद्वर्षा समयस्य निर्णयपरोदेशो न वाजायत,
मृध्न्यादेशमयं निधाय सुगुरोः संशिश्रिये सादडीम् ॥२४९॥
व्याख्यान जनशान्ति धायकभरं कृत्वा मुनिर्योगिराट्,
मुद्रां चेतसि रंदधे रमजुपां शान्त्याः गुणानां नृणाम् ।

विनेयास्तं नेतुं परमपरमित्वा मुनिनृपम,
परावृत्ता ज्ञात्वा परममपरं खूबशशिनम् ॥२५१॥
ततो यात्वा भाई कनकमलजीमातृवचनात्,
समानस्थुः स्थाने व्रतचरमुनिः शान्तिमहितः ।
ततः सत्यादानः कनकमलजी श्रेष्ठिसहितो-
गुलेछोचेवाक्यं मुनिषु महितं शान्तिसहितम् ॥२५२॥
ग्रहीत्वा कस्येयं गृहवसतिरादेशमधुना,
ग्रहीतेति पृष्टोः कथयति मुनिः शान्तिसहितः ।
समस्थामागारे कनकमलजीमातृवचनात्,
ततस्तद्वाक्यं सः पुनरपि निशम्येति सुमुनेः ॥२५३॥
ययौ तूष्णीं भावं तदपि हृदये तस्य गमनम्,
समाकाङ्क्षन्प्रायात् कनकमलजीवाक्यवशगः ।
पुनर्मध्याह्ने स कनकमलजी श्रेष्ठिपुवरः,
सुपन्नालालीयं सपदि सदनं प्राप मुनिपम्॥२५४॥
तदायात्पूज्यश्रीविनयशशिगच्छीयसुजनो-
महात्मा तत्र श्रीबुधमणिमुनिश्चन्दनमलः ।
तदादिष्टं तस्यास्यमुनिमहितस्यैकफलके,
महाप्रेम्णा जातं हितकरं धर्ममहितम् ॥२५५॥

भावार्थ—उस समय [illegible] के पूज्य श्री [illegible] की सम्प्रदाय के कुछ मुनि स्थिर-वास के रूप में विराजमान थे

यहाँ किस की आज्ञा से ठहरे हैं। तब शांतमूर्ति श्री खूबचंद्रजी म० ने उत्तर दिया. कि—"हम श्री कनकमलजी की मातेश्वरीजी से आज्ञा प्राप्त करके यहाँ ठहरे हैं।" उस समय श्रीमान् सतीदानजी की यह इच्छा थी. कि इन को यहाँ से अभी हटा दिये जाँय। किन्तु कनकमलजी ने कहा. कि पारणा करके चले जाँयगे! थोड़ी देर के पश्चात् कनकमलजी फिर वहाँ आये। और मध्यान्ह के समय में ही सेठ पन्नालालजी काँकरिया की हवेली में पधारने की प्रार्थना करने लगे। तब हमारे चरित्रनायकजी शांतिपूर्वक वहाँ पधार गये। वहाँ पर पूज्य श्री विनयचन्द्र ली महाराज के गच्छानुयायी, पंडित रत्न, श्री चन्दनमलजी महाराज पधारे। इस प्रकार मुनि श्री खूबचंद्रजी महाराज एवं पंडित रत्न श्री चन्दनमलजी महाराज इन दोनों मुनिवरों का व्याख्यान उस एक ही स्थान पर, प्रेम पूर्वक होता था ॥२५१–२५२–२५३–२५४–२५५॥

तत्र श्रीमुनिनन्दलालसहितोहीरादिलालोमुनि–
र्विद्वच्छेखरदेविलालसुमतिः श्रीचौथमल्लस्तथा।
श्रीमन्तोमुनिराजकाः शुभपराः सप्तोत्तरार्विंशति,
तस्युस्तत्रपरेऽपिदेशनपरा लालान्तपन्नागृहे ॥२५६॥
व्याख्यानं महतां बभूव जनता सन्तोषदं मोददम्,
पुण्यं तत्खलु काकरीयसहनं पुण्यापरं प्राजनि।
चुन्नीलालमुहुन्दजीसुसहितः पन्नादिलालो धनी,
सेवां श्रीमुनिवृन्दकस्य विदधे श्रद्धाढ्य भक्त्यायुतः

यहाँ किस की आज्ञा से ठहरे हैं। तब शांतमूर्ति श्री खूबचंद्रजी म० ने उत्तर दिया कि—"हम श्री कनकमलजी की मातेश्वरीजी से आज्ञा प्राप्त करके यहाँ ठहरे हैं।" उस समय श्रीमान् सतीदासजी की यह इच्छा थी, कि इन को यहाँ से अभी हटा दिये जाँय। किन्तु कनकमलजी ने कहा, कि पारणा करके चले जाँयगे! थोड़ी देर के पश्चात् कनकमलजी फिर वहाँ आये। और मध्यान्ह के समय मे ही सेठ पन्नालालजी काँकरिया की हवेली मे पधारने की प्रार्थना करने लगे। तब हमारे चरित्रनायकजी शांतिपूर्वक वहाँ पधार गये। वहाँ पर पूज्य श्री विनयचन्द्र जी महाराज के गच्छानुयायी, पंडित रत्न, श्री चन्दनमलजी महाराज पधारे। इस प्रकार मुनि श्री खूबचंद्रजी महाराज एवं पंडित रत्न श्री चन्दनमलजी महाराज इन दोनों मुनिवरों का व्याख्यान उस एक ही स्थान पर, प्रेम पूर्वक होता था ॥२५१–२५२–२५३–२५४–२५५॥

तत्र श्रीमुनिनन्दलालसहितोहीरादिलालोमुनि–
र्विद्वच्छेखरदेविलालसुमतिः श्रीचौथमल्लस्तथा।
श्रीमन्तोमुनिराजकाः शुभपराः सप्तोत्तरांविंशति,
तस्थुस्तत्रपरेऽपिदेशनपरा लालान्तपन्नागृहे ॥२५६॥
व्याख्यानं महतां बभूव जनता सन्तोषदं मोददम्,
पुण्यं तत्खलु काकरीयसदनं पुण्यापणं प्राजनि।
चुन्नीलालमुकुन्दजीसुसहितः पन्नादिलालो धनी,
सेवां श्रीमुनिवृन्दकस्य विदधे श्रद्धाञ्च भक्त्यायुतः

रहा। पाली निवासी श्रीमान् सेठ मुकुन्दचन्दजी वालिया, सेठ चुन्नीलालजी सोनी और सेठ पन्नालालजी काँकरिया आदि महानुभावों ने मुनिवरों की खूब ही सेवा-भक्ति की ॥२५६–२५७॥

नेत्राश्वाङ्कमहीमिते शुभतमे माघे सिते पञ्चमी-
तिथ्यां सः मुनिसंघदेशनवशात् श्रीदेविलालादिभिः ।
पञ्चाम्बुं प्रस्थित्य नूतनपुरोमार्गेऽजमेरादिके,
व्याख्यानं विदधन् ययावलवरं श्रीखूबचन्द्रोमुनिः ॥
आग्रातः समुपाययौ मुनिवरं श्रीसंघकस्तत्र तम्,

गब्बूलाल जी चौधरी को दक्षिण में विराजित श्री जवाहिरलालजी महाराज के पास भेजे। दक्षिण से श्रीमान वकील गब्बूलालजी द्वारा मुनि श्री जवाहिरलालजी महाराज की तरफ से ब्यावर श्री संघ के पास सम्मति आई, कि मुनि श्री मुन्नालालजी महाराज को पूज्य-पद पर प्रतिष्ठित कर दिये जाँय। उधर जम्मू से भी जावरा-निवासी श्री मगनीरामजी राका द्वारा मुनि श्री मन्नालालजी म० की ओर से आचार्य-पद स्वीकार करने की सूचना प्राप्त हुई। तथापि दीवान बहादुर सेठ उम्मेदमलजी लोढा राय बहादुर सेठ छगनमलजी रीयां वाले और श्री सेठ रतनलालजी सरावगी आदि महानुभावों ने पूज्य श्री श्रीलाल जी महाराज की सेवा में उपस्थित होकर सम्प का पूर्ण प्रयत्न किया। किन्तु उनके निष्फल हो जाने पर संवत् १९७५ की शुभ मिति माघ शुक्ला पञ्चमी (बसन्त पञ्चमी) के दिन श्री मुन्नालालजी महाराज को बड़े समारोह के साथ आचार्य-पद प्रदान कर देने का ध्रुव निश्चय किया गया।

सूनाःपूर्ववदेव तत्र सुमतिः श्रीमान्यशोरावजी,
हिंसकारणकारुरोधधनिकः संवत्सरे पर्वणि ॥२६०॥

भावार्थ—वि० सं० १९६७ के चातुर्मास की भाँति अब की बार भी संवत्सरी-पर्व के दिन चरित्रनायकजी के सदुपदेश से, धर्म-प्रेमी श्रीमान् सेठ यशवन्तराय जी सा० के प्रशंसनीय प्रयत्न द्वारा लोहामण्डी और शहर आदि स्थानों के चार कत्ल-खाने बन्द रहे। यों यह चातुर्मास भी बड़े ही आनंद के साथ सम्पन्न हुआ ॥२६०॥

पंजाब में धर्म-प्रचार

वर्षायाः समयं समाप्य मुनिराडत्याग्रहात्पूर्ण-
माग्रायां कतिचिद्दिनानि वसनं कृत्वा तु दिल्लीं ययौ।
जम्मुं गन्तुमनाततोमुनिवरश्रीदेविलालेन सः,
कालिन्द्यास्तटगाननेकनगरान् शिक्षेश्च नाभां ययौ ॥२६१॥

भावार्थ—शहर आगरा का चातुर्मास समाप्त कर के, आप श्रावकों के अत्याग्रह से कुछ दिन लोहामण्डी (आगरा) में ठहर कर, फिर देहली पधारे। यहाँ से पंडित मुनि श्रीदेवीलालजी म० के साथ आपने जम्मू (काश्मीर) पधारने के लिए विहार किया। मार्ग में जमुना-पार के अनेक क्षेत्रों को तथा करनाल, अम्बाला और पटियाला को पावन करते हुए आप नाभा पधारे ॥२६१॥

विलायतीरामसहानुभावं श्रीओसवालं लुधियानवासम् ।
संघाज्ञयासोत्सवदीक्षितं तं विधायनाभापुरीतः प्रतस्थे ॥
मालेरकोटे जिनधर्मतत्वं दिशन् प्रपेदे लुधियानपुर्याम् ।
तत्रात्मरामस्य गुरून्प्रपश्य एकत्र पट्टे दिशतिस्म धर्मम्॥२६३

भावार्थ—नाभा में आपके पास, लुधियाना निवासी श्री विलायतीराम जी नामक एक ओसवाल बन्धु ने दीक्षा स्वीकार की। नाभा श्री संघ ने दीक्षोत्सव बड़े ही समारोह के साथ मनाया। नाभा से प्रस्थान कर, आप मालेरकोटला होते हुए लुधियाना पधारे। वहाँ पंजाबी मुनि उपाध्याय श्री पं० आत्मारामजी म० के गुरु, दादा-गुरु और उनके गुरु विराजमान् थे। उन मुनिराजों के साथ चरित्र-नायकजी ने बड़ा ही प्रेम तथा वात्सल्यता का भाव प्रकट किया। और उन्हीं के निवास-स्थान में एक ही पट्टे पर बैठ कर व्याख्यान दिये॥२६२-२६३॥

ततः कपूरस्थलकं पवित्वा, जलन्धरं प्राप्यसतीं प्रवृद्धाम्।
श्रीपार्वतीं चन्द्रमतीञ्च दृष्ट्वा सुधासरे पूज्यमुनिं प्रवृद्धम्।
श्रीकाशिरामोदयचन्द्रकाभ्यां, ददर्शतं सोहनलालजीकम्,
प्रश्नोत्तराणि भवताञ्च तेषां, जातानि वात्सल्यप्रभावितानि

भावार्थ—लुधियाना से फगवाड़ा और कपूरथला होते हुए जालंधर पधारे। वहाँ भारत-विख्याता, विदूषी सतीजी श्री पार्वती जी महाराज और विदुषी सती श्री चन्दादेवीजी म० आदि सतियाँ विराजती थीं। उनके साथ भी आपकी यथायोग्य वात्सल्यता रही

और परस्पर ज्ञानचर्चा भी होती रही। फिर आप भंडियाला होते हुए अमृतसर पधारे। वहाँ पर विद्वान् और वयोवृद्ध पूज्यश्री सोहनलालजी महाराज, गणिजी श्री उदयचंदजी म० और युवाचार्य पंडित मुनि श्री काशीरामजी म० के साथ भी आपका प्रेम वात्सल्य अच्छा रहा। परस्पर शास्त्रोक्त प्रश्नोत्तर भी यथेष्ट रीति से हुए। २६५-६५

क्षेत्राणि संपूज्य बहूनि सद्यः श्रीलालचन्द्रैर्जरठैर्मुनिभिः
सस्वागतं पण्डितदेविलालैः सुश्यालकोटञ्च ततः प्रपेदे ॥
एकत्र पट्टे दिशनं द्वयोश्च बभूव सप्रेमपरं वृषस्य।
कृतादरं जम्बुमरं मनीन्द्रो-मुन्नेन्दुबालेन्दुमुनी प्रतस्थे ॥२६७

भावार्थ—अमृतसर से विहार कर, पसरूर आदि कई क्षेत्रों में होते हुए आप शहर स्यालकोट में पधारे। वहाँ पर वयोवृद्ध और पंजाबी सम्प्रदाय में सब से बड़े पंडित मुनि श्री लालचन्दजी म० सा० विराजमान् थे। उन्होंने पंडित मुनि श्री देवीलालजी म० और श्री चरित्रनायकजी म० का प्रेम पूर्वक यथायोग्य स्वागत किया। एक ही स्थान पर ठहरे और व्याख्यान भी सम्मिलित ही हुए। वहाँ से आप जम्बूतवी पधारे। वहाँ के श्री संघ ने जयध्वनि के साथ आपका बड़ा ही शानदार स्वागत किया। नगर में पदार्पण करते ही आप सीधे पूज्य श्री मुन्नालालजी म० एवं तपस्वी श्री बालचन्द्रजी म. की सेवा में उपस्थित हुए। २६६-२६७।

वर्षावसानसमये मघवानगर्याम्,
मुन्नेन्दुबालशशिना प्रययौ महात्मा ।
तत्रागतालवरसंघनिवेदनेन,
वर्षाव्यतीतकरणाय ततः प्रपेदे ॥२७१॥

भावार्थ—जम्मू श्री संघ के विशेष आग्रह से, तथा पूज्य श्री की आज्ञा से प्रेरित होकर आपने संवत् १९७५ का चातुर्मास काश्मीर देशस्थ जम्मू नगर मे ही किया। इस चातुर्मास मे आपकी अमृतोपम वाणी से श्री संघ मे तपस्या तथा धर्म-ध्यान का खूब ही उद्योत हुआ। चातुर्मास की समाप्ति के पश्चात् आचार्य श्री जी के साथ-साथ उनकी सेवा मे रह कर आप अनेक क्षेत्रों को पावन करते हुए, पुनः दिल्ली नगर मे पधारे। और फिर अलवर श्री संघ का विशेष आग्रह देख कर पूज्य श्री की आज्ञा से चातुर्मास के लिए अलवर पधारे ॥२७०–२७१॥

अलवरपुरमध्ये योगनिष्ठोमुनीन्द्रः
रसमुनिनिधिभूमिवत्सरे विक्रमीये ।
समनयतसुजैनोक्त्या गिरार्पचेता,
विविधसदुपदेशैस्तच्चतुर्मासिकञ्च ॥२७२॥
मुनिवरपथगामीश्रीमयाचन्द्रयोगी
तप श्रुतमतपथस्तन्वतो येन मानम् ।
अभिहितसुतपोऽन्ते सद्गुरोरादेशेन,

ई. की आज्ञानुसार शहर मे समस्त चूचड़खाने तथा भड़भूँजे हलवाई, धोबी, और सुनारों की भट्टियाँ भी बन्द रहीं। सरकारी बगीचों के अजायबघरों मे रहने वाले महाराजा साहब के शेरों को भी उस दिन माँस के बदले दूध पिलाया गया। और पारणे के दिन, दीन-दुखी प्राणियों को भोजन वस्त्र और धन आदि दान दिया गया। उस दिन जितने भी कार्य हुए वे सब-के-सब दीन-दुखी और दरिद्रों तथा धर्म-कार्य-निरत व्यक्तियों के लिए सुख प्रदायक थे।

नरनिकरमुखाब्जप्रेरिताहास्यवर्षा,
समजनि वसुधाया हर्षहास्यप्रभेव।
तदनुमनुजवृन्दैः श्रूयमाणः स्मितास्यै-
र्दिवि निरवधिरूचै दुन्दुभीनां निनादः ॥२७२

भावार्थ—उस समय पृथ्वी-मण्डल के नैसर्गिक परिहास की असाधारण क्रान्ति के समान पुरुषों के मुख-मण्डल से हर्ष की वर्षा हुई। और आकाश-मण्डल को गूँजा देने वाली भेरियों एवं दुन्दुभियों का गगन-भेदी निनाद हुआ ॥२७२॥

जयपुरनगरेऽगाश्वाङ्कभूवैक्रमाब्देऽ-
नयतशुचिदचातुर्मासमुग्रप्रभावैः।
गुरुवरपदभक्तश्रीप्रभाग्रानिवासी,
जिनशुभपथजोऽभूत्फूलचन्द्रस्य सूनुः॥२७३॥
स्फुरदमलगुणौघः पुण्यगण्यः सुनामा,

नयनिनयविवेकोद्यानपुंस्कोकिलो यः ।
सुजनकमलभानुर्दुष्टकक्षे कृशानुः,
यतिवृढदृढभक्तीरेखचन्द्रोगुणीन्द्रः ॥२७४॥
ललितभुवनमध्ये तस्य योगीन्यवात्सीन्,
जिनपतिवचनार्कैः प्रापुफुल्लन्नयाब्जम् ।
अजिनजिनमनुष्याः प्राप्सतप्रेमभावैः,
प्रणिहितजिनधर्मं कर्मनिर्मूलनाय ॥२७५॥

भावार्थ—वि० सं० १९७७ का चातुर्मास आपने जयपुर में किया। वहाँ पर भक्त-शिरोमणि, आगरा निवासी श्रीमान् सेठ रेखचन्द्रजी के सुपुत्र श्री फूलचन्द्रजी की हवेली में निवास किया। वहाँ पर भगवान के वचन रूपी सूर्य द्वारा आपने धर्म रूपी कमल को विकसित किया। और जैन तथा जैनेतर जनता के हृदय-प्रदेश में, कर्म-ग्रन्थि का समूल नाश करने के लिए,धर्म के प्रभाव को स्थायी रूप से अंकित कर दिया ॥२७३-२७५॥

तत्रातपत्सोष्णजलाश्रयेण, मासं मथाचन्द्रयतिस्तपस्वी ।
तत्पारणान्ते जिनशास्त्रशिष्ट्या, दानैर्यशोभिःसुरभीकृतासङ्गम्
तपोव्रतस्याचरणादवश्यं, पुण्यावधेः सिद्धिरसादिवातः ।
कन्याणकोटिं कलयाञ्चकार, कराम्बु केकस्य न लास्यलीलम्
तरङ्गिगीतध्वनिस्फूर्जिततूर्यनादः ।
मोदयामासकथाप्रबन्धैर्विशोपतोऽशेषमनीषिहृद्यैः ॥२७८॥

पश्चाद्रामपुरे कृतं निधिहय द्वारावती वत्सरे ॥२८०॥
तद्वर्षे शुचिमासमासि विदिते श्रीमन्दसौरस्थले,
दीक्षां दुग्गडगोत्रभूतवणिजौ तातात्मजौ श्रद्धया ।
लक्ष्मीचन्द्रपवित्रशिष्टनयभृच्छ्वेतांशुशुभ्रप्रभ,
हीरालालसुधर्मभावनिरतौ सम्प्रादधातां तदा ॥२८१॥

भावार्थ—जयपुर का चातुर्मास समाप्त करके आपने वि० सं० १९७८ का चातुर्मास मन्दसोर मे किया। उसी वर्ष के मार्गशीर्ष मास मे मन्दसौर निवासी पोरवाड महाजन श्री अब्बालाल जी, आपकी सेवा में दीक्षित हुए। तत्पश्चात् विक्रम संवत १९७९ का चातुर्मास रामपुरा (होलकर स्टेट) मे मनाया गया ॥२८०॥ रामपुरा का चातुर्मास पूर्ण होने के बाद उसी वर्ष माघ मास मे मन्दसौर निवासी दूगड़ गोत्रोत्पन्न श्री लक्ष्मीचन्द्र जी एवं श्री हीरालालजी यह दोनों पिता-पुत्र चरित्रनायकजी की सेवा में दीक्षित हुए ॥२८१॥

अगमदजयमेरुं धर्मसंवर्धनाय,
नभवसुनिधीभूमीवत्सरे योगनिष्ठः ।
कृतनिखिलपदार्थद्योतनां भारतीद्धाम्,
वितरति धुतदोषां सार्हतीं भारतीं वः ॥२८२॥

भावार्थ—वि० सं० १९८० का चातुर्मास आपने धर्म की विशेष वृद्धि के निमित्त अजमेर मे किया। यहाँ पर आपने वीर

प्रभु द्वारा प्ररूपित तत्वों का भली प्रकार से निरूपण करके धर्म-ध्यान का दिव्य प्रकाश किया ॥२८२॥

प्रायाद्गुरोर्भक्तिनिषिक्तचते. ततो मुनिर्व्यावरनामपुर्याम्
दृष्ट्वागुरुं योगपनन्दलालममृमुदत्पादसरोजभृङ्गाः॥२८३॥
तत्पट्टनादैद्गुरुणा सहैषस्तालं लुसानीञ्च मदारियाञ्च ।
कोशीस्थलं गङ्गपुरं पुरञ्च यात्वा समायात्पुरभीलवाडाम् ॥
व्याख्यानविज्ञाःसुधियोमुनीन्द्रास्तत्राचकासुःस्वरशक्तिगुम्फाः
चैत्रेसिते द्वादशमीतिथौ च सोमेऽदिदीक्षित्रक्षवणिग्मनुष्यान् ॥
निर्विण्णं तं महाभागं. रत्नलालं गुणान्वितम् ।
भण्डारीगोत्रसम्भूतं श्रीमद्रिखभचन्द्रकम् ॥२८६॥
प्राडवागन्वयजं चैव मुणोतं राजमल्लकम् ।
दशसहस्रसंख्याताजनाः प्राणैर्युरुत्सवम् ॥२८७॥
चैत्रेमहावीरविभोर्जयन्ती दिने समारोहणमापविष्ट ।
प्रसिद्धवक्ता मुनिचौथमल्लो विद्वन्सु रत्नं मुनिदेविलालः ॥
सद्भारतीद्धाः सकलाः मुनीन्द्रा इत्यादयः पूर्णतया चकासुः ।
जिनेन्द्रधर्मस्य समुन्नतीनां प्रमोदमुद्राः समधुर्जनानाम् ॥
ततोऽगमद्रत्नपुरे मुनीशः समाव्ययीज्जागजनन्दचन्द्रे ।
वर्षे तथा सद्गुरुपादपद्मं श्रित्वा तनित्वा जिनधर्मवृद्धिम् ॥

भावार्थ—अजमेर से विहार कर आप ब्यावर पधारे । यहाँ पर गुरुवर्य श्री नन्दलालजी म० विराजमान थे । [illegible]

प्रभु द्वारा प्ररुपित तत्वों का भली प्रकार से निरूपण करके धर्म-ध्यान का दिव्य प्रकाश किया ॥२८२॥

प्रायाद्गुरोर्भक्तिनिषिक्तचते, ततो मुनिर्व्यावरनामपुर्याम्
दृष्ट्वागुरुं योगपनन्दलालममूमुदत्पादसरोजभृङ्गाः॥२८३॥
तत्पट्टनादैद्गुरुणा सहैपस्तालं लुसानीञ्च मदारियाञ्च ।
कोशीस्थलं गङ्गपुरं पुरञ्च यात्वा समायात्पुरभीलवाडाम् ॥
व्याख्यानविज्ञाःसुधियोमुनीन्द्रास्तत्राचकासुःस्वरशक्तिगुम्फाः
चैत्रेसिते द्वादशमीतिथौ च सोमेऽदिदीत्त्रिक्षवणिग्मनुष्यान् ॥
निर्विण्णं तं महाभागं, रत्नलालं गुणान्वितम् ।
भण्डारीगोत्रसम्भूतं श्रीमद्रिखभचन्द्रकम् ॥२८६॥
प्राडवागन्वयजं चैव मुणोतं राजमल्लकम् ।
दशसहस्रसंख्याताजनाः प्राणैयुरुत्सवम् ॥२८७॥
चैत्रेमहावीरविभोर्जयन्ती दिने समारोहणमापविष्ठ ।
प्रसिद्धवक्ता मुनिचौथमल्लो विद्वन्तु रत्नं मुनिदेविलालः ॥
सद्भारतीद्धाः सकलाः मुनीन्द्रा इत्यादयः पूर्णतया चकासुः ।
जिनेन्द्रधर्मस्य समुन्नतीनां प्रमोदमुद्राः समधुर्जनानाम् ॥
ततोऽगमद्रत्नपुरे मुनीशः समाव्ययीज्जागजनन्दचन्द्रे ।
वर्षे तथा सद्गुरुपादपद्मं श्रित्वा तनित्वा जिनधर्मवृद्धिम् ॥

भावार्थ—अजमेर से विहार कर आप व्यावर पधारे । यहाँ पर गुरुवर्य श्री नन्दलालजी म० विराजमान थे । [illegible]

१९८१ का चातुर्मास आपने अपने गुरुजी की आज्ञा शिरोधार्य कर रतलाम में किया। वहाँ पर भी पूर्ण रूप से धर्म-जागृति हुई ॥२६०॥

चातुर्मासमभीप्सितं करसुरद्वारक्षमावत्सरे,
नेतुं पर्यटनेऽग्रसिद्धसहसा नेत्रव्यथानीमचे।
तत्स्थानाद्गुरुणा सहैव समयान्मल्हारगढस्थले,
डाक्टर्श्रीधनजीसुदक्षपुरुषः संप्राचिकित्सीत्तदा ॥२६१॥
पश्चात्प्रेक्टिशनर्मु खामृतवचः पीयूषपूर्णाकरः,
डाक्टर्श्रीयुतरामनाथसुगुणी श्रीमन्दसौरेऽपिजत्।
तेन प्रकृति संस्थितोमुनिवरोगूलाबचन्द्रः सुधी-
श्चातुर्मासमनिक्तपूर्णयशसा तपोदुश्चरम् ॥२६२॥

भावार्थ—रतलाम का चातुर्मास पूर्ण करने के पश्चात् वि० सं० १९८२ का चातुर्मास मन्दसौर में मनाने के लिए आप अपने गुरु श्री नंदलालजी म० की सेवा में नीमच पधारे। वहाँ पर आपकी एक आँख में बड़ी भारी पीड़ा उत्पन्न हो गई। अतः आप अपने गुरु श्री के साथ ही मल्हारगढ़ पहुँचे। वहाँ पर धनजी भाई नामक एक चतुर डॉक्टर ने आपकी नेत्र-पीड़ा की पूर्ण चिकित्सा की ॥ २६१ ॥ फिर आप मल्हारगढ़ से मन्दसौर पधारे। वहाँ एक सिद्धहस्त प्रॉक्टिशनर डाक्टर श्री रामनाथजी की चिकित्सा द्वारा परिश्रमादिजी की नेत्र-पीड़ा शान्त हुई। इस

गुरुदेव के पवित्र चरण-कमल की शरण को प्राप्त करके भ्रमर की भाँति परम प्रमुदित हुए ॥२८३॥ फिर गुरुजी के साथ ही साथ वहाँ से विहार कर मार्ग में ताल, लसानी, मदारिया, कोशीथल, गङ्गापुर और पुर आदि स्थानों के निवासी भूले-भटके संसारी जीवों को धर्म का सन्देश सुनाते हुए भीलवाड़ा में पधार गये ॥२८४॥ भीलवाड़ा मे उस समय व्याख्यान कला-प्रवीण विद्वद्वर्य प्रसिद्धवक्ता पंडित मुनि श्री चौथमलजी महाराज आदि ३७ मुनि-राज विराजमान् थे। वहाँ पर उक्त प्रसिद्धवक्ताजी की सेवा में चैत्र शुक्ल द्वादशी सोमवार के दिन, तीन वैश्य भाइयों की दीक्षा हुई ॥ २८५ ॥ उन तीनों दीक्षार्थियों में से प्रथम दीक्षार्थी श्री राजमलजी थे। और दूसरे भंडारी गोत्रोत्पन्न श्रीमान रिखवचन्दजी तथा तीसरे पोरवाड़ वंशोत्पन्न श्री रत्नलाल जी थे। इन तीनों दीक्षार्थियों के दीक्षा-महोत्सव का कार्यक्रम दस हजार की विराट् मानव-मेदिनी के बीच बड़े समारोह पूर्वक सम्पन्न हुआ ॥२८६–२८७॥ तदनन्तर चैत्र शुक्ला १३ के दिन मुनि-मण्डल की संरक्षता में महावीर जयन्ती महोत्सव बड़े उत्साह पूर्वक मनाया गया। प्रसिद्धवक्ता पं० मुनि श्री चौथमलजी म०, विद्वद्वर्य पं० मुनि श्री देवीलालजी म०, एवं हमारे चरित्रनायकजी आदि मुनि-रत्नों ने धर्मोन्नति के लिए जन-समाज में अपने ओजस्वी भाषणों द्वारा आनन्द-वर्षा की झड़ी लगा दी। जिससे भव्य प्राणियों का हृदय अत्यन्त प्रमुदित हुआ ॥२८८–२८९॥ इसके पश्चात वि० संवत

१९८१ का चातुर्मास आपने अपने गुरुजी की आज्ञा शिरोधार्य कर रतलाम में किया। वहाँ पर भी पूर्ण रूप से धर्म-जागृति हुई ॥२९०॥

चातुर्मासमभीप्सितं करसुरद्वारत्नमावत्मरे,
नेतुं पर्यटनेऽग्रसिद्धसहसा नेत्रव्यथानीमचे।
तत्स्थानाद्गुरुणा सहैव समयान्मल्हारगढ़स्थले,
डाक्टर्श्रीधनजीसुदक्षपुरुषः संप्राचिकित्सीत्तदा ॥२९१॥
पश्चात्रे क्टिशनर्मु खामृतवचः पीयूषपूर्णाकरः,
डाक्टर्श्रीयुतरामनाथसुगुणी श्रीमन्दसौरेऽपिजत्।
तेन प्रकृति संस्थितोमुनिवरोगूलाबचन्द्रः सुधी-
श्चातुर्मासमनिक्तपूर्णयशसा तपोदुश्चरम् ॥२९२॥

भावार्थ—रतलाम का चातुर्मास पूर्ण करने के पश्चात् वि० सं० १९८२ का चातुर्मास मन्दसौर में मनाने के लिए आप अपने गुरु श्री नंदलालजी म० की सेवा में नीमच पधारे। वहाँ पर आपकी एक आँख में बड़ी भारी पीड़ा उत्पन्न हो गई। अतः आप अपने गुरु श्री के साथ ही मल्हारगढ़ पहुँचे। वहाँ पर धनजी भाई नामक एक चतुर डॉक्टर ने आपकी नेत्र-पीड़ा की पूर्ण चिकित्सा की ॥२९१॥ फिर आप मल्हारगढ़ से मन्दसौर पहुँचे। वहाँ एक सिद्धहस्त प्राइवेट डाक्टर श्री रामनाथजी की चिकित्सा द्वारा परिश्रमपूर्वक नेत्र-पीड़ा शान्त हुई। इस

प्रकार पूर्ण स्वास्थ्य-लाभ प्राप्त कर के आपने वहाँ पर भी महान उग्र तपश्चरण एवं धर्मोपदेशादि कार्यों से चातुर्मास समाप्त करके विहार किया ॥२६२॥

अम्लावदं वीक्ष्य ततोमुनीन्द्रो नन्दावतां चैव निमोदमायात्
आकोदडायां न्यवसत्प्रभावी श्रीमद्गुरोः पादसरोजभृङ्गः॥
वचोहरस्तत्र समारिरच्च वार्णीमभार्णीत्सहसा मुनीन्द्रम् ।
वणिगदफड्या कुलजोगुलावचन्द्रोऽधुनाऽर्वीभजतोपताम्॥
समीक्षितुं त्वच्चरणारविन्दमेतुं स्तवीने पुरजावरायाम् ।
नेनिच्च लिप्सां कृपया प्रमोत्वं तनुष्व धर्मं हि पिपूर्हि सौख्यं
मुनीश्वरः श्रीगुरुणा सहैव श्रीजावरायां समयात्ततश्च ।
समीक्ष्य तं श्रेष्ठिवरोऽवदच्च त्वद्दर्शनानन्दमयोत्सवोमे ॥
गुर्वास्यचन्द्रामृतसिक्तसङ्गः, पर्तुं चतुर्मासमुदग्रभावैः ।
सम्प्रार्थयासमास मुनीन्द्रवृन्दं, स्थित्वा ततोऽवर्धत जैनधर्मम्
तिस्रस्ततः प्रावृष उत्सवेन, समव्ययत्सङ्घशुभाग्रहेण ।
श्रीजावरायां मुनिसत्तमोऽयं, धर्मस्य वृद्धिं महतीं ततान ॥
अतीतपत्तत्र तपोधनश्च, नाभा छवालाल उदग्रबुद्धिः ।
प्रणम्य सर्वज्ञमनन्तमीशं, जिनेन्द्रचन्द्रं श्रुतकर्मनन्थम् ॥२६६
अष्टचत्वारिंशदिनान्युष्णोदकाश्रयेण ।
समातन्त्रित योगराट् रुद्धवा मनोहरिम् ॥३००॥

भावार्थ—वहाँ से अमरावद, नन्दावता और निम्बोद आदि

क्षेत्रों को पवित्र करते हुए हमारे चरित्रनायक, गुरु-पद-कमल-भ्रमर प्रभावशाली श्री खूबचंद्रजी म० ने आँकोड़ा नामक ग्राम को अलंकृत किया ॥२६६॥ जिस समय हमारे चरित्रनायकजी अपने गुरु महाराज के साथ आँकोड़ा में विराजमान् थे। उसी समय एक व्यक्ति ने जावरा से आकर निवेदन किया कि-"मुनिनाथ! जावरा में सेठ गुलाबचंदजी दफ्तरिया अस्वस्थ हैं। वे श्रीमान् के चरण-कमल के दर्शन करने के लिए चिर-अभिलाषी हैं। और प्रभु की पावन-शरण में उन्होंने विनय पूर्वक प्रार्थना करवाई है, कि आप जावरा में पदार्पण करके धर्म तथा कल्याण का प्रशस्त मार्ग बतला कर मुझे कृत-कृत्य करें" ॥२६४-२६५॥ संदेश-वाहक द्वारा कीगई प्रार्थना पर ध्यान देकर आप अपने गुरुजी के साथ शीघ्र ही जावरा पधारे। और वहाँ सेठजी को दर्शन देकर उन्हें परमनंदित किये ॥२६६॥ गुरुजी के चंद्र-मुख द्वारा भाषित अमृतमयी अनुपम वाणी से तृप्त होकर जावरा श्री संघ ने अपने यहाँ चातुर्मास करने के लिए मुनिराजों की सेवा में प्रार्थना की। मुनिराजों ने इस विनंती को स्वीकार कर वहाँ पर धर्म की खूब ही प्रभावना की ॥२६७॥ संघ की प्रार्थना से लगातर तीन चातुर्मास अर्थात् वि० सं० १९८२-८४ और ८५ का का चातुर्मास आपने जावरा में ही व्यतीत करके, वहाँ धर्म की खूब ही अभिवृद्धि की ॥२६८॥ संवत् १९८३ में वहाँ तपोधन मुनि श्री छब्बालालजी म० ने मोक्ष-प्रदायी श्रीजिनेंद्रदेव के ध्यान में लीन होकर केवल गर्म जल

के अधार से अपने मन रूपी चंचल बंदर को वश मे करके अड तालीस दिन का अनशन-व्रत किया ॥२६६-३००॥

जैनज्ञानसुवृद्धिनामरुचिर श्रीपाठशालाश्रिताः,
सर्वे बालकबालिका मुनिवर श्रीसौख्यलालस्तदा।
पर्यैक्षिष्टसुशिक्षणं प्रतिफलैरापिप्रयच्छीनवल-
मल्लस्यात्मजसूर्यमल्ल उचितो धोकावटं क्रोद्भवः ॥३०१
पुस्तकैर्वसनैश्चैव त्रयोः संपुटकादिभिः।
स्वादिष्टैः शर्कराखाद्यैः समाभाच्चुर्महोत्सवम् ॥३०२॥
कुमारा एकपञ्चाशत्संख्याता भारतीगृहे।
ऊनविंशतिकौमार्यस्तत्काले प्रायशोऽध्यगुः ॥३०३॥

भावार्थ—इस समय चरित्रनायकजी के सुशिष्य मुनि श्री सुखलालजी म० ने स्थानीय श्री जैन ज्ञानवृद्धि पाठशाला के बालक-बालिकाओं की परीक्षा ली। परीक्षा का परिणाम पूर्ण संतोषजनक निकला। अतः इसके उपलक्ष मे यादगिरी निवासी सेठ श्री नवलमलजी सूर्यमलजी सा० धोका की ओर से पारितोषिक दिया गया ॥३०१॥ पुस्तकें, कपड़े आदि के साथ-साथ पेड़ों की भी प्रभावना हुई। उस समय पाठशाला मे ५१ लड़के और १६ कन्याएँ विद्याभ्यास करती थीं ॥३०२-३०३॥

चातुर्मासं जावरायां समाप्य, ऊनरवाडां बोरखेडां तथा च।
हथ्नारां स नादलेटां हु लित्वा, शैलानायामाहिनोद्धर्मवृद्धै

से सुशोभित होते हुए आप धारा नगरी पधारे। और वहाँ पर भी धर्म का महान् उद्योत किया ॥३०७॥

धाराद्विहृत्यागतक्षेत्रकेषु, हिंसादिकृत्यांश्च निवार्यमानः।
श्रीखाचरोदे रतलामसंघः प्रार्थाकृते तं समुदः प्रपेदे ॥३०८॥
अत्याग्रहात्पूज्यनिदेशनाच्च, परणागभूखण्डमहीमिते सः।
रत्नेलामां च पुनश्चचाल, मासाय तुर्याय मुनीशचन्द्र॥
तत्स्थाने सुतपोधनोमुनिवरोनामाछ्वालालजी,
प्रातासीद्वसुधैवहानि नियमैरुष्णोदकस्याश्रयैः।
भाद्रे शुक्लचतुर्दशे कुजयुते घस्रे तपः पारणे,
सद्भक्ताः समनेनिजुः शुभतरं भक्तिप्रभावोत्सवम् ॥३१०॥
श्रीमत्सज्जनसिंहशुभ्रचरितश्रीरत्नपूर्भूपति,
निर्देशः समरुद्धपाकपुटिकानाडिंधमानां ततः
स्नानांसीधगृहं तथान्यदुरितस्थानं गुरुज्ञानतो-
वीतत्रासविलासहासरभसं ध्यात्वा जिनानां पतिम् ॥३११॥
ऐषुः सप्तसहस्रभक्तमनुजाः सानन्दवीच्युच्छलाः,
मन्त्रीग्रासमहीभृतोनरवराः पञ्चेडपालादयः।
मुन्नालालमुनीन्द्रगच्छतिलका वादीभपञ्चाननाः,
आसन् श्रीगुरुधर्ममूर्तिमुनयः कल्याणकन्दाभ्युदाः ॥३१२॥

भावार्थ—धार से विहार कर आपने नागदा, विड़वाल, कोद, वखतगढ़, बदनावर और मूलथान आदि क्षेत्रों को पावन किया।

यों मार्ग की समस्त देहाती (ग्रामीण) जैन-जैनेतर प्रजा का पथ-प्रदर्शन करते हुए तथा उन्हें जीव-हिंसादि कुकृत्यों के फंदों से विमुक्त करते हुए आपने सावरोद की भूमि में पदार्पण किया। जब आप सावरोद में विराजते थे। तब रतलाम का श्री संघ आपकी सेवा में उपस्थित हुआ। और आगामी चातुर्मास अपने यहाँ करने की उनने जोरदार प्रार्थना की ॥३०८॥ आचार्य श्री एवं गुरुवर्यजी म० के आदेशानुसार श्री संघ की विनंती को मान देकर आपने संवत् १९८६ का चातुर्मास मध्यभारत के सुप्रसिद्ध नगर रतलाम में किया ॥३०९॥ रतलाम में आपके समीपवर्ती तपस्वी मुनिश्री छव्वालालजी महाराजने केवल गरम जल केआधार से ५१ दिन की तपश्चर्या की। भाद्रपद शुक्ला १४ मङ्गलवार के दिन पारणा हुआ। अतः उस दिन अन्यान्य भाविक भक्तों ने मिलकर बड़े ही समाराह से भक्ति-भाव पूर्वक तप महोत्सव मनाया ॥३१०॥ उस महोत्सव के दिन रतलाम नरेश हिज हाईनेस महाराजा सर सज्जनसिंह जी बहादुर के, सी, आई, के, सी, वी, ओ, ए, डी, सी, ई, ने अपनी राज-घोषणा द्वारा शहर के समस्त हिंसा काण्डों को स्थगित करवा कर भगवान् महावीर के गौरवपूर्ण धर्म के प्रति अपनी प्रगाढ़ श्रद्धा प्रकट की ॥३११॥ उस तपोत्सव पर धर्म-मूर्ति, कल्याणकारी तथा आदर्श मुनिराजों के प्रभाव से लगभग सात हजार जन-संख्या उपस्थित हो गई थी। रतलाम राज्य के दीवान तथा अन्यान्य जागीरदारों ने और पंचेड के ठाकुर साहब

श्री चैनसिंहजी महोदय ने भी मुनिवरों के व्याख्यान में भाग लिया था ॥३१२॥

जिनेन्द्रधर्मस्य समुन्नतीनां, सार्वीत्रकीर्णां परभागभाजाम् ।
उद्घाटयामासमहोत्सवेन, मुनीशबोधैर्जिनपाठशालाम् ॥

भावार्थ—वहाँ रतलाम मे जैन धर्म तथा विद्या की उन्नति के हेतु धर्म-जिज्ञासुओं के लिए मुनि श्री खूबचन्द्रजी म० के सदुपदेश से एक जैन पाठशाला का उद्घाटन हुआ ॥३१३॥

समाप्य पण्णागनिधीन्दुजातं, सप्ताष्टभूखण्डमहीभवञ्च ।
मासाश्चतुर्यान्नगराननेकान्, संपूयमानोनिमचं जगाम ॥
मुन्नेन्दुकं तत्र मुनीशवर्यम्, संसेव्य संदर्श्य सुमाननीयम् ।
तैरेवसार्धं पुनरेव तत्र, श्रीमन्दसौरमहितं ववार ॥३१५॥
तत्रैव भण्डारिकुलस्य पाता, श्रीकुक्कडेशस्य निवासीकृष्णः
संदीक्षितस्तत्र तदैव दैवाद्ददर्श हस्तीमलजिन्मुनीशम् ॥३१६

भावार्थ—इस प्रकार संवत १९८६-८७ और के ८८ चातुर्मास को समाप्त करके आपने रतलाम से विहार किया। मार्ग मे बाँग-रोद, खाचरोद, नागदामण्डी, आलोट, ताल, गंगधार, सीतामऊ, नारायणगढ़, मल्हारगढ़, और जीरण आदि ग्रामों और नगरों की धर्म-पिपासु जनता मे धर्म-प्रचार करते हुए नीमच मे विराजित पूज्य श्री मुन्नालालजी म० की सेवा मे पधारे। फिर वहाँ से पूज्य श्री के साथ ही साथ आपका शुभागमन मन्दसोर नगर मे हुआ।

वहाँ पर कुकड़ेश्वर निवासी भण्डारी गोत्रोत्पन्न लघु वयस्क दीक्षार्थी श्री किशनलालजी की दीक्षा हुई। उसी अवसर पर मारवाड़-देश-पावन-कर्ता पूज्य श्री हस्तीमलजी म० ठाने ८ का शुभागमन हुआ ॥३१४-३१५-३१६॥

मुन्नेन्दुकोहस्तिमलश्च पूज्या-वेकाशने धर्ममलं दिशन्तौ ।
विरेजतुः सम्मिलितौ शुभौता-वेकाशने राजितशुक्रजीवौ ॥
श्रीहस्तिमल्लोमुनिपूज्यवर्यान्मुन्नेन्दुकाच्चारितनायकाच्च ।
तुर्याणि सूत्राणि रहस्यपूर्णं, प्राध्यैष्ठ तत्वस्य सुबोधकानि

भावार्थ—पूज्य श्री मन्नालालजी म० और पूज्य श्री हस्तीमल जी म० दोनों एक ही स्थान पर ठहरे। दोनों के व्याख्यान भी सम्मिलित ही हुए। पूज्य श्री हस्तीमलजी म० ने पूज्य श्री मन्नालालजी म० तथा श्री चरित्रनायकजी से चार सूत्रों का अध्ययन किया। तथा जैनागमों के गूढ़ रहस्य की अनेक धारणाएँ हृदयंगम की ॥३१७-३१८॥

नन्दागभूखण्डमहीमिते नः, समाप्य वृष्टेः समयं मुनीन्द्रः
दृष्टुं गुरुं रत्नललामपुर्याम्, श्रीजावरातोहितदं प्रपेदे ॥
आज्ञां गुरोः प्राप्य सुपौषमासे, श्रीमन्दसौरे वृषमासिसञ्चन्
सम्मेलने पूज्यमुनीश्वरेण सार्धं तदाजमेरपुरीं प्रतस्थे ॥३२०॥

भावार्थ—संवत् १९८९ का चातुर्मास जावरा में समाप्त करके आप अपने गुरु जी के दर्शनार्थ रतलाम पधारे। और वहाँ से फिर गुरुजी की आज्ञा प्राप्त करके पौष मास में मन्दसौर की भूमि को पावन करते हुए आचार्य के साथ-ही-साथ बृहत् साधु-सम्मेलन के

माघे शुक्लशनौ दिने मखतिथौ श्रीमन्दसौरे पुरे,
ज्यानन्दग्रहगह्वरीपरिमिते संवत्सरे वैक्रमे ।
तत्स्थाने मिलिता जनाः सुकृतिनः सच्छ्रावकाः श्राविकाः,
संख्यायां नभपूर्णपुष्करशरज्याज्ञापितायां किल ॥३३८॥

भावार्थ—उसी वर्ष के फाल्गुन शुक्ला तृतीया शुक्रवार के दिन रतलाम के स्थानकवासी चतुर्विध संघ ने हमारे चरित्रनायकजी की परम पवित्र कल्याणकारिणी, बोधप्रद और सरस वाणी पर तथा उनके शान्त्यादि आचार पदोचित गुणों पर मुग्ध होकर उन्हें स्वर्गीय पूज्य श्री मुन्नालालजी म० के स्थान पर, आचार्य-पद से सम्मानित किये ॥३७॥ आचार्य-पद से अलंकृत होने के पश्चात चरित्रनायकजी ने चतुर्विध संघ के समक्ष अपने गच्छ के सुयोग्य साधुओं को उनके गुणानुसार जैन-दिवाकर, युवाचार्य, गणि, उपाध्याय, प्रवर्तक, और सलाहकारक आदि पद-प्रदान किये जाने की महत्वपूर्ण घोषणा की। इस घोषणा के शुभ समाचार वायुवेग की तरह नगर-निवासियों के कर्ण-कुहरों में गूँज उठे। अन्यान्य ग्रामों और नगरों के भी संघों ने भी इस महत्वपूर्ण घोषणा का हार्दिक स्वागत किया। और इस पदोत्सव के कार्यक्रम को अपने-अपने ग्रामों में सानंद सम्पादित करने के लिए आचार्य श्री की सेवा में साग्रह प्रार्थना भी की। परन्तु संघ के अग्रगण्य सज्जनों ने इस महोत्सव के कार्यक्रम को सम्पादन करने के लिए मन्दसौर के क्षेत्र को ही उपयुक्त समझ

तत्र स्थले सभृतपूरुषाणां, शब्दं समाकर्ण्यपुराङ्गनानाम् ।
आचार्यवीक्षा तृषिते क्षणानामेवं विधं चेष्टितमाविरास ॥
अट्टालमारोहति किञ्च फाल विलोल पाद ललनासमूहे ।
पाणिन्धमत्वेन बभूव भङ्गः परस्परं काञ्चनकाङ्कणानाम् ॥

चन्दजी श्रीश्रीमाल केशरीमलजी गादिया जीतमलजी बोथरा, नन्दरामजी चौथमलजी श्रीश्रीमाल, चौदमलजी बोहरा, जीतमलजी चाणोदिया प्रभृति सघ के अग्रगण्य श्रावकों एवं श्राविकाओं ने श्रीचरित्र-नायकजी की अत्यधिक सेवा-भक्ति करके ज्ञान-सम्पादन किया।

पाठको ! हमारे चरित्रनायक श्री खूबचन्दजी म० को अजमेर में सर्वानुमति से अखिल भारतवर्षीय पूज्यपाद मुनि-मण्डल द्वारा पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी म० की सम्प्रदाय के लिये उपाध्याय का पद मिला था। तथापि आपको उसका किंचित् भी अभिमान नहीं था।

पाठको ! समय की विचित्रता के कारण कार्य कुछ का कुछ बन जाया करता है। जगत्-विख्यात प्रातः स्मरणीय पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज सा० की सम्प्रदाय में किसी कारणवश दो दल हो गये थे। उन दोनों दलों में परस्पर एकता स्थापित करने के लिये कई स्थानों पर कई बार प्रयत्न किया गया। किन्तु कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई। तब शास्त्र-विशारद बाल-ब्रह्मचारी श्री मज्जनाचार्य पूज्य श्री मन्ना-लालजी म० के सद् प्रयास से अजमेर में बृहद् साधु-सम्मेलन के समय इस पारस्परिक वैमनस्य का अन्त हो गया था। अर्थात् पूज्य श्री मन्नालालजी म० और पूज्य श्री जवाहिरलालजी म० इन दोनों पूज्यों के साधुओं में परस्पर सुलह हो गई थी। और दोनों पक्षों के मुनियों में परस्पर वन्दना व्यवहार और आहार-पानी आदि चालू हो गया था। इस प्रकार पूज्य श्री मन्नालालजी म० ने सम्प्रदाय करके अखण्ड

भावार्थ—आचार्य-पदारोहण समारोह-जनित, गगन-भेदी जय-घोष को श्रवण करके नगर की महिलाएँ आचार्य श्री के दर्शनार्थ उत्कण्ठित हो उठीं। और वे दर्शन की चेष्टा करने लगीं। उन झरोखों में बैठी हुई महिलाओं के सुवर्ण-कंकणों के पारस्परिक-संघर्ष से रम्य शब्द उत्पन्न हो रहा था। उस समय वे सौभाग्य-सिन्दुर-बिन्दु से सुशोभित हँस-मुखी महिलाएँ मुनिनाथ की स्तुति में लीन थीं।

शहर से बाहर कुछ दूर पधारे थे। जब आप सदैव की भाँति शौचादि से निवृत्त हो स्थान पर पधारे, तो वहाँ पर आप क्या देखते हैं, कि साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाओं से व्याख्यान का यह विशाल स्थान खचाखच भरा हुआ है। आप श्री को बाहर से पधारते देख कर समस्त उपस्थित चतुर्विध श्री संघ ने खड़े होकर स्वागत सत्कार और विनय पूर्वक आपके प्रति बहुमान प्रकट किया। अचानक इतनी विशाल मानव-सभा देख कर आप अपने हृदय में विचार करने लगे, कि आज गुरवर्य श्री के समीप चतुर्विध श्री संघ का यह वृहत् समूह क्यों एकत्रित हुआ है। इस महत्व पूर्ण कार्य का गुप्त भेद आपको किसी ने भी नहीं बताया था। सदैव की भाँति व्याख्यान देने के लिये आप अपने पट्टस्थ आसन पर आकर विराजमान हुए। उस समय आपके पूज्यपाद गुरवर्य श्री ने व्याख्यान में पधार कर अपने पवित्र मुखारविन्द से फरमाया कि " हे देवानुप्रिय ! मैं आज चतुर्विध श्री संघ की सर्वानुमति से संघ के समक्ष श्री सूरचन्दजी म० को अपने हाथों से आचार्य-पद प्रदान करते हुए पंचम पट्टस्थ स्वर्गीय पूज्य श्री मन्नालालजी म० के स्थान पर इन्हें पंचम पट्टाधिकारी घोषित करता हूँ। आज से चतुर्विध श्री संघ आपकी आज्ञा में रहेगा। " स्थविर मुनि श्री के इस वक्तव्य

नार्योऽभुः स्फाटिककुटुमाग्रसुवर्णवातायनसन्निविष्टाः ।
आकाशमार्गेण मुनीन्द्रवीक्षा गता इव स्वर्वनिता विमानैः ।
आस्याय हास्या नयनेपुलास्या सिन्दूरविन्दूदयशोभिभाला
तुस्ताव स्त्रीजनपङ्क्तिरार्यं पूज्यं क्षमासागरकं मुनीशम् ॥

यश प्राप्त कर लिया था। अजमेर के मुनि-सम्मेलन का कार्य-क्रम पूर्ण होने के पश्चात् आप मुनिवरों के कन्धों, डोली में बैठ कर ब्यावर शहर में पधारे। यहाँ पर आपके शरीर में यकायक असाता-वेदनीं कर्म का उदय हुआ। इसके उपस्थित होने के पूर्व ही आपने अपने कर्त्तव्यों की आलोचना योग्य मुनिवरों के सम्मुख कर ली थी। प्रमुख मुनिवरों ने अब अवसर देख कर आपको समाधिसंथारा (आजीवन अनशन व्रत) करवा दिया था। थोड़ी ही देर के पश्चात् शान्ति पूर्वक श्वासोश्वास लेकर आपने अपने इस भौतिक शरीर को सदा के लिये छोड दिया। और आपकी आत्मा दिव्य गति को प्राप्त हो गई। अर्थात् आषाढ कृष्णा द्वादशी के दिन आपका स्वर्गवास ब्यावर में हो गया।

इधर रतलाम में हमारे चरित्रनायक श्री खूबचन्दजी म० ने चातुर्मास की समाप्ति के पश्चात् विहार नहीं किया। और आप गुरुवर्य श्री जी की सेवा में रतलाम ही में विराजमान रहे, आपको स्वप्न में भी कभी यह विचार उत्पन्न नहीं होता था कि मुझे भी आचार्य-पद मिले तो अत्युत्तम हो। परन्तु भविष्य में क्या-क्या होने वाला है! यह तो आगम-विहारी(ज्ञानी)के अतिरिक्त और कोई नहीं जान सकता है। अस्तु

फाल्गुन शुक्ला ३ का सुखद मंगल-प्रभात था। चरित्रनायकजी प्रति-लेखन गुरु-वन्दन स्वाध्याय आदि करके शौच-निवृत्ति के लिये

जिन-दिवाकर इह चौथमलश्चारुवरवाणीप्रयुक् ॥
युवाचार्यपदसमलंकृतो ध्यानीछगनलालजित् ।
उपाध्यायविरुदसमर्चितोमुनिमहसमल्लमुनियमगः ॥३४७॥

रतलाम में स्थविर पंडित मुनि श्री नंदलाल जी म० एवं आप श्री की सेवा में सम्प्रदाय के समस्त मुनि उपस्थित हुए। और वैशाख मास के शुक्ल पक्ष में सम्मेलन कृत्य अपनी सम्प्रदाय के समस्त उपस्थित मुनियों के समक्ष आचार्य श्री जी ने फरमाया, कि मेरी वृद्धावस्था है अतएव आप मुनिवरों की सेव (देख भाल) करने के निमित्त मैं अपनी उपस्थिति में ही अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर देना चाहता हूं। आप सर्व मुनिवर इस पद के योग्य मुनिवर को देख कर उनका नाम प्रकट करें। इसी प्रकार उपाध्याय पदवी और प्रवर्तक पद के लिए भी आप नाम प्रकट करें। तब आचार्य श्री की आज्ञा से और चतुर्विध संघ की सर्वानुमति से प्रतिष्ठावान पं० मुनि श्री चौथमलजी म० को जैन दिवाकर, पंडित मुनि श्री छगनलाल जी म० को युवाचार्य, पंडित मुनि श्री महासमल जी महाराज को उपाध्याय पंडित मुनि श्री प्यारचन्द जी म० को मुनि [illegible] श्री मोती लाल जी म० और पंडित मुनि श्री हजारीमल जी म० को प्रवर्तक तथा पंडित मुनि श्री केशरीमल जी महाराज को सर्व सम्मति से पद से विभूषित किये जाने का पूर्ण निश्चय हुआ। इस शुभ समाचार से दूरदूर के संघ ऐसे थे—समाना, उदयपुर, अजमेर, बड़ी सादड़ी, सादड़ी, जावरा आदि आदि स्थानों के संघों की ओर से इस उपलक्ष में पूजा करने की विज्ञप्ति पर महोत्सव करने करने के लिये पूज्य श्री के समक्ष में विनति करने लगे। अन्त में सम्मान पूर्वक इस उपलक्ष में उपस्थित श्री संघों को आज्ञा देने का निश्चय हुआ.

साहित्य निष्णात मन वचन और काया से पवित्र तप, दया, दान, शम और क्षमा, आदि गुणों के भण्डार मुनि श्री हीरालाल जी का स्वर्गवास विक्रम संवत् १९७४ मे हुआ ॥३८८॥ शीलव्रती, ध्यानी, तपस्वी, ज्ञानी, शान्त स्वभावी, और गम्भीराकृति मुनि श्री नन्दलालजी म० का स्वर्गवास सम्वत् १९९३ मे ८१ वर्ष की अवस्था मे हुआ ॥३८९-९०॥

स्वामिन्! त्वच्चरणे पतन्ति विमलात्मानोजनाः केवलम्,
यैते स्युर्भुविभूरिमृद्धिमणयश्चित्रं समानोदयाः।
धृत्वा ख्यातिमिमां तवेश! विशदां मार्ग्यादिलब्धर्द्धयः
के केन भ्रमरी भवन्ति चरणाम्भोजे सदास्वादिनि ॥३९१॥
पीत्वा त्वद्वचनामृतं जनगणाः सुस्थः समाध्युद्भवो,
देवानां निकरस्तु तत्समसुधा तृप्तस्तथा चाभवत्।
त्वं त्वं वै भुवनोपकारकरणे नैवासितृप्तस्तथा,
त्वामेवं विबुधाः स्तुवन्ति गुणिषु प्राप्तैकरेखं समम्॥३९२॥
श्लाघा ते मुनिराज! कस्य वदने जिह्वैव नो विद्यते,
विद्या सापि न कास्ति देव तव या जिह्वांतमासेदुषी।
सन्ति त्वय्यनघाः पवित्रितदिशः सम्यग्गुणाचापरे,
मत्वेतीव समस्तजैनजनता त्वां स्वामिनं मन्यते ॥३९३॥

भावार्थ— आचार्य श्री के इस निष्पाप वक्तव्य को

ददतु नः सुकृतं भुवि निर्ममा,
शररमामरमामरमानिता ॥३९५॥

भावार्थ—विभिन्न वाद-विवाद स्वरूपी उन्मत्त हाथियों के के लिए सिंह के समान, कपट रूपी जाल के भञ्जन के लिए हस्तीस्वरूप, संसार समुद्र से पार करने के लिए जहाज के समान धैर्यरूपी सिंह के निवास के लिए गुफा तुल्य हे गुरु महाराज! आपके चरण-कमल, मुक्तिरूपी फल की प्राप्ति के लिए कल्पवृक्ष के समान हैं। आपके उन्हीं अमल कोमल चरणारविंदों की भक्ति के द्वारा संसार के भव भय ग्रसित अक्षय-निरामय सुख प्राप्त हो ॥३९४-३९५॥

श्रुत्वेदं स्तवनं प्रसन्नमनसाऽय खूबचन्द्रस्ततः
आशीर्वादततेः भवन्तु सुखिनः सर्वे जगत्प्राणिनः।
कामक्रोधमहामदादिरिपवो यान्तु क्षयंसर्वतः,
सर्वे सन्तु निरामया नयवृता धर्मश्रिया शोभिताः ॥३९६॥

भावार्थ—मुनियों द्वारा की गई इस स्तुति को श्रवण करके हमारे चरित्रनायक आचार्य श्री खूबचन्द्र जी म० ने प्रसन्न चित्त से आशीर्वाद प्रदान किया, कि जगत् के समस्त प्राणी निरोग धर्म-निष्ठ और शोभायमान हों। तथा कामादिक षड् रिपुओं का संहार करते हुए अखण्ड सुख और यश को प्राप्त हों ॥३९६॥

श्रीचम्पकः क्षत्रियबन्धुरेको जग्राह जैनं व्यसनानि हित्वा

पर्जन्यकाले निगते जनानां, दिल्लागराग्राभृतिसंघकानाम्॥
संप्रार्थनायोजितगज्जनानां, सप्रार्थनाः प्रार्थनयोजिताश्च।
समागतास्तत्र मुनीश्वराय, धर्मस्य तत्त्वार्थप्ररूपकाय॥३६८
खण्डेलवास्तव्य जनास्तु तेषामनेकवारं विनयं विदध्युः।
संगत्य पार्श्वे मुनितल्लजस्य धर्मस्य तत्त्वार्थ पिपासितास्ते॥

भावार्थ—इस संवत १९६३ के चातुर्मास मे हमारे चरित्र-नायक जी के सदुपदेश से एक चम्पक सेन नामक क्षत्रिय भाई ने दुर्व्यसनो को त्याग कर जैन धर्म स्वीकार किया। इस प्रकार चरित्रनायक जी के प्रभाव से गत १८-१९ साल मे जितनी तपस्या नहीं हुई थी उतनी तपस्या इस चातुर्मास मे हुई। बहुतसे उपवास तथा ३१ तेले, २८ चोले, २० पचौले, १८ अठ्ठाइयां आदि के अतिरिक्त धर्म-ध्यान संवर और पौषध व्रतादि हुए। चातुर्मास की पूर्ति के समय आपकी सेवा मे देहली, आगरा, अलवर, टोंक, अजमेर, किशनगढ़, और खण्डेला आदि कई गांवों के श्री संघों की ओर से अपने-अपने क्षेत्र मे चातुर्मास की विनंतियाँ तार और चिट्ठियों द्वारा आईं। तथा खण्डेला के भाइयो ने तो चार-पांच बार चरित्रनायक जी की सेवा मे आकर अपने क्षेत्र को पावन करने के लिए बहुत ही आग्रह किया॥ ३६७॥ ३६८॥ ३६९॥

श्रीनारनौलात्पटियालसंस्थान्,
पत्राण्यदात् श्रीमुनियोऽमरेन्द्रः।

आदर्श चरितम् के [illegible]
[illegible]
[illegible]

अभिलाषा लगरही है। सती जी श्री धनदेवी जी (जम्मूवाली) अस्वस्थ हैं। वे आपके दर्शनों के लिए बहुत ही लालायित हो होरही हैं। अतएव शीघ्र ही पधार कर दर्शन देने की कृपा करें"। इन सभी समाचारों को लक्ष में रख कर आचार्य श्री जी ने खण्डेला की भूमि को स्पर्श करके नारनौल होते हुए देहली पधारना ही आवश्यकीय और उचित समझा। और तदनुसार मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा को आपने जयपुर से विहार कर दिया॥४०१-४०२-४०३॥

विहारकाले मुनिपस्य पुर्याः, विद्यालयीयाः वसनैः सुनद्धाः।
जयैर्ववोभिःशुभरम्यवाचः, विद्यार्थिनस्तत्रपुरप्रचेलुः॥४०४
प्रतिष्टिताः सज्जनश्रेष्ठिवर्गाः, शिरांसिपादौमुनिराजकीयौ।
सप्रश्रयंप्राघ्वनिसँनमनाः, शोभांविशेषांपरितश्चकुः॥४०५
जैनेतराः जैनजनाश्च नार्यः, केचिन्मनन्तः मुनिपँ तदा-मू।
केचिच्चसज्ञानिगताःमनुष्याः, सँदर्शनैःस्वँसफलँविदध्युः४०६
उपवनमधिशिश्ये श्रेष्टिचम्पेन्दु पत्नी,
विनययुतशुभैः सः प्राग्रहैं साधुराजः।
शरगतदश सँख्यां तत्र वासँ दिनाना,
मथगमनमकार्षीत् भक्तिपूर्णां खण्डेलाम्॥ ४०७॥

भावार्थ—विहार का दृश्य बड़ा ही अजीब और विलक्षण था श्री जैन सुबोध स्कूल के विद्यार्थी गण एक ही युनीफार्म (ड्रेस) से सुसज्जित हो कर गगन भेदी जय घोष करते हुए आगे-आगे चल

[illegible]

[illegible] पधारे । श्रीमान सेठ [illegible] जी [illegible] ने उटवाड़े में करीब ६० सहधर्मियों के [illegible] द्वारा उचित स्वागत सत्कार किया था । उधर [illegible] ८-१० सज्जन गुरु भक्ति से प्रेरित हुए लगभग ४० माइल सामने आचार्य श्री की पेशवाई में आ गये थे जाड़े का मौसम था । और रास्ता बालु रेत का था । इस से जैन साधुओं का आवागमन बहुत ही कम होता था तथापि हमारे वयो-वृद्ध आचार्य श्री जी ने जन-कल्याण की दृष्टि से उस कठिन रास्ते से पधारना ही उचित समझा मार्ग के छोटे बड़े सभी ग्रामों में अनेक अज्ञानी जैनेतरों को आपने अपने प्रतिबोध द्वारा सत्पथ

अभिलाषा लगरही है। सती जी श्री धनदेवी जी (जन्मदात्री) अस्वस्थ हैं। वे आपके दर्शनों के लिए बहुत ही लालायित हो रहीं हैं। अतएव शीघ्र ही पधार कर दर्शन देने की कृपा करें"। इन सभी समाचारों को लक्ष में रख कर आचार्य श्री जी ने खण्डेला की भूमि को स्पर्श करके नागौर होते हुए देहली पधारना ही आवश्यकीय और उचित समझा। और तदनुसार मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा को आपने जयपुर से विहार कर दिया॥४०१-४०२-४०३॥

विहारकाले मुनिपस्य पुर्याः, विद्यालयीयाः वसनैः सुनद्धाः।
जयैर्ववोभिःशुभरस्यवाचः, विद्यार्थिनस्तत्रपुरप्रचेलुः॥४०४
प्रतिष्टिताः सज्जनश्रेष्टिवर्गाः, शिरांसिपादौमुनिराजकीयौ।
सप्रश्रयंप्राघ्वनिसँनमनाः, शोभांविशेषांपरितश्चकुः।४०५
जैनेतराः जैनजनाश्च नार्यः, केचिन्मनन्तः मुनिपँ तदा-म्।
केचिच्चसभानिगताःमनुष्याः, सँदर्शनैःस्वँसफलँविदध्युः ४०६
उपवनमधिशिश्ये श्रेष्टिचम्पेन्दु पत्नी,
विनययुतशुभैः सः प्राग्रहै साधुराजः।
शरगतदश सँख्यां तत्र वासँ दिनाना,
मथगमनमकार्षीत् भक्तिपूर्णां खण्डेलाम्॥ ४०७॥

भावार्थ—विहार का दृश्य बड़ा ही अजीब और विलक्षण था श्री जैन सुबोध स्कूल के विद्यार्थी गण एक ही युनीफार्म (ड्रेस) से सुसज्जित हो कर गगन भेदी जय घोष करते हुए आगे-आगे चल

लगभग चार सौ पांच सौ हो जाती थी। वहां त्याग प्रत्याख्यान तथा तपश्चर्या अच्छी हुई। खण्डेला से विहार कर आप नारनौल की तरफ पधारे। तब आपके स्वागतार्थ नारनौल से लगभग दस-बारह कोस की दूरी पर कविवर्य पं० मुनि श्री अमरचन्दजी म० और श्री श्रीचंदजी म० आपके सामने पधारे थे। जिस दिन आपका शुभागमन नारनौल में हुआ, उस दिन भी आपके स्वागत के लिए चतुर्विध श्री संघ आपके सामने पेशवाई में पहुंचा था। तथा पं० मुनि श्री तुलसीचन्द्रजी म० (जो [illegible] आचार्य हैं और श्री श्यामलालजी महाराज आदि [illegible] ने भी प्रसन्नता पूर्वक आपके सामने पधारने का [illegible] था। [illegible] भेदी [illegible] के साथ आपका [illegible] [illegible] [illegible] आचार्य-पदोत्सव का शुभ [illegible] [illegible] शुभ अवसर पर [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] ([illegible]) [illegible] [illegible]

([illegible])

के पथिक बनाए। रास्ते में आहार पानी मकान आदि के अनेक परिषहों को सहन करते हुए आप खण्डेला पधारे ॥ ४०४-४०५-४०६-४०७ ॥

गव्यूतिपंक्तिं प्रययुर्मुनीशम्, खंडेलवास्तव्यजनाः भवन्तम्।
यत्रैतिनोसाधुजनः प्रकृष्टात्, तत्रैवसंसैकतपूर्णमार्गे ॥४०८॥
ग्रामाज्जपुंसां प्रतिबोधनाय, जलादिपीडां परिपोढमानः।
शीतर्तुकालेजरठोऽपि धर्मप्रचारणाय समुदःप्रतस्थे ॥४०९॥
खण्डेलपुर्यं भवतः सरण्यां, व्याख्यानतुर्यं प्रबभूव चैकम्
विद्यालयेऽत्रजनैःपूर्णेश्चाशतानांनरवृन्दकानाम् ॥४१०॥
भूमा तपस्यापि बभूव नृणाम्, मुनेः प्रभावात्कृतकर्मदात्री।
ततो विहारं पुरिनारनोले, चकारधर्मेन्दुनमोभिहन्ता ॥४११॥
गव्यूति पञ्चें कविजिन्सुरेन्द्रः, मुनीशकं प्रापमुनिद्वयेन।
जयादिशब्दैर्नगरे प्रवेशो, बभूवखूबेन्दुमुनीश्वरस्य ॥४१२॥
दुलीन्दु हर्म्ये वसनं चकार, शुभाग्रहैः श्रेष्टिदुलीन्दुकैः स;
देशामृतै धार्मिकसंघकं तम्, सिञ्चन्मुनीशोऽत्र सुशान्तचेताः।
श्रीपृथ्वीचन्द्रस्य मुनीश्वरस्य, प्राचार्य पट्टोत्सवके तदैव ।
श्रीफूलचन्द्रोमदनोमुनिश्च, समागतौ माघसिते जयायाम् ॥

भावार्थ—खण्डेला में आपके चार-पांच सार्वजनिक व्याख्यान हुए। एक व्याख्यान सरकारी स्कूल में हुआ। जन संख्या

लगभग चार सौ पांच सौ हो जाती थी। वहा त्याग प्रत्याख्यान तथा तपश्चर्या अच्छी हुई। खरडेला से विहार कर आप नारनौल की तरफ पधारे। तब आपके स्वागतार्थ नारनौल से लगभग दस-बारह कोस की दूरी पर कविवर्य प० मुनि श्री अमरचन्दजी म० और श्री मीचंदजी म० आपके सामने पधारे थे। जिस दिन आपका शुभागमन नारनौल मे हुआ, उस दिन भी आपके स्वागत के लिए चतुर्विध श्री स-घ आपके सामने बेगवाई मे पहुचा था। तथा प० मुनि श्री तुलसीचन्द्रजी म० (जो [illegible] आचार्य है और श्री श्यामलालजी महाराज [illegible] हुए) ने भी प्रसन्नता पूर्वक आपके सामने पधारने का हार्दिक भाव [illegible] मेरी जन्मभूमि पर से मेरा सम्बन्ध छोड़ कर [illegible] श्री रेड़ तुलसीदासजी [illegible] सा गर्व-परिहास का शुभ दर्शन [illegible] शुभ अवसर पर दुनियां समझ सकी [illegible] कवि [illegible] महाराज (पहाड़) [illegible]

ध्यानाग्नि-दग्ध-परिवर्द्धित-पाप पुंजः ।
पूज्यश्रिरं-विजयतां-मुनि खूबचन्द्रः ॥४॥

भावार्थ—अनेक राष्ट्रों मे मनुष्यों से पाद-पूजित, शान्ति के विहार के लिये, सुन्दरजता मण्डप, बढ़े हुए पाप समूह को ध्यान की अग्नि से जलाने वाले, पूज्य श्री मुनि खूबचन्द्रजी की विजय हो ॥४॥

दूरीकृताखिल-ममत्व-तमो-वितानः ।
कदर्प दर्प दलने सफला-भियानः ॥
क्षान्त्या-विनिर्जित-कदाग्रह-कोपमानः ।
पूज्यश्रिरं-विनयतां-मुनि खूबचन्द्रः ॥५॥

भावार्थ—सम्पूर्ण ममता के अन्धकार समूह को दूर करने वाले, कामदेव के अभिमान को चूर करने मे सफल है, आरम्भ जिनका क्षमा से, कुत्सित आग्रह, कोप, और अभिमान को जीतने वाले पूज्य श्री मुनि खूबचन्द्रजी की विजय हो ॥५॥

साक्षादखण्ड-शुभ सत्य-दयावतारः ।
शास्त्रावगाहन-परिष्कृत-बुद्धिचारः ॥
पूर्ग्राम-सँघ-कृत-जैनमत-प्रचारः ।
पूज्यश्रिरँ-विजयतां-मुनि खूबचन्द्र ॥६॥

भावार्थ—अखण्ड शुभ, सत्य और दया के अवतार, शा

के अवगाहन से परिष्कृत-विचार युक्त, नगर, ग्राम और संघों में जैनमत के प्रचारक, पूज्य श्री मुनि खूबचन्द्रजी की विजय हो॥६॥

उपसंहार

व्याख्यानैः सुमनोहरैः परिषदः श्रद्धान्युतानुमोदयन्। नाना-जन्म-विवद्ध कर्म-कलिनां, मूलं-समुन्मूलयन्॥ श्रेष्ठे-मोक्ष पथे सुयुक्ति शतकैर्भव्याञ्जनानुस्थापयन्। पूज्याचार्य वरः सदैव जयतात्, सुप्तं जगद् बोधयन्॥७॥

भावार्थ—सुमधुर व्याख्यानों द्वारा श्रद्धा युक्त मनुष्यों का आनन्द बढ़ाते हुए, अनेक जन्मों के बांधे हुए कर्म वृक्षों की मूल को उखाड़ते हुए, सैकड़ों युक्तियों द्वारा श्रेष्ठ मनुष्यों को सुन्दर मोक्ष मार्ग में ले जाते हुए, सोये हुये जगत को जगाते हुये आचार्यवर सदैव विजय पाते रहें॥७॥

लोकाः दानपरास्तदात्मभवन्शोभोत्सवैर्भाविताः ॥

भावार्थ—देहली के श्री संघ ने आपका शानदार स्वागत किया। और चातुर्मास के लिए अत्यन्त आग्रह किया। अतः संवत् १९९४ का चातुर्मास आपने शहर देहली में किया ॥ ४ ८ ॥ ४१९ ॥

इसी वर्ष आपकी सेवा में निवास करने वाले तपोनिष्ठ मुनि श्री छत्रालाल जी महाराज ने केवल गर्म जल के आधार से [illegible] दिन की तपश्चर्या की। तपस्या की पूर्ति पर बाहर [illegible] दर्शनार्थियों ने आकर तपोत्सव की शोभा [illegible] उस दिन दया, दान, परोपकारादि [illegible] [illegible]

[illegible]

चातुर्मास चांदनी चौक वाले श्री महावीर जैन-भवन की विशाल बिल्डिंग में हुआ।

चतुर्थमल्ला श्रयनेमिचन्द्रः दिनानि तुर्याश्वनितानि तेपे।
तोयस्य तप्तस्य शुभा श्रयेण, पूर्वाणि कर्माणि विचूर्णयिष्यन्॥
श्रीखूबचन्द्रस्यमुनिश्छवेन्दुः तुर्यात्रिसंख्याप्रमितं दिनानाम्।
पर्यूषणे कर्म निवर्हकाणि, तपांसि तेपे जलमात्र सेवी॥
दुग्धस्य लोकाःशुभपारणान्ते, चक्रुः सुदानं जिन भक्तिलीनाः।
निर्ग्रन्थसप्ताहपरं सुज्ञान, दानं ददौ तत्र चतुर्थमल्लः॥

भावार्थ—इस वर्ष के चातुर्मास मे धर्म-ध्यान और तपश्चर्या अच्छी हुई। निर्ग्रंथ-प्रवचन-सप्ताह सानन्द मनाया गया। तपस्वी श्री छव्वालाल जी म० तथा तपस्वी श्री नेमिचन्द जी म० ने केवल गर्म जल के आधार से क्रमशः ३४ और ४७ दिन की तपश्चर्या को तप-व्रतों की पूर्ति पर संघ की ओर से बारह दरी के नीचे दूध की प्याऊएँ दीगई थी। और उस दिन बहुत-सा उपकार हुआ। बाहर गावों से दर्शनार्थियों ने उपस्थित होकर दर्शन और चरण-स्पर्श का लाभ लिया था। चरित्रनायक जी की शान्तवृत्ति, वैराग्य, और आदि सद् गुणों को समाज भली प्रकार जानती है। आप अधिकांश तात्विक ज्ञान की बातें और सूत्र-रहस्य कण्ठस्थ याद हैं।

निर्ग्रन्थप्रवाहमनेकलोकाः पुरीश्च ग्रामान् प्रविहाय याताः
श्रीशक्रपुर्याः शुभसंघ कस्तानातिथ्य सत्कारतया प्रपेदे ।
प्रभावना धर्मसुलीन भावा तत्रस्त्य जनता हर्षे प्रमग्ना ॥
गार्हस्थ्यकार्यं प्रविहाय सद्यः धर्मस्य संराधानतत्परा भूम् ॥

उदयपुर नरेशः पूज्य श्री खूबचन्द्रात्
प्रथितसुखदशान्तिः शास्त्रतत्वस्य.....
जनमतशुभतत्वँ चौथमल्लात्तथैव,
जिनमतशुभसूर्यात् ख्यातवक्तुः पृथिव्याम् ।
निगदितमनुकर्ण्या भूरि भूरि प्रशँसाम,
विदधदन्तु शुभं स्वँ तत्वसँलीन भावा ।
गदतु गदतु धर्म्मं मे हितँ भावयन्तौ,
पुनरपि शुभवार्णी स्वच्छचेताः विनेने ॥

भावार्थ—इसी वर्ष अर्थात् १९९५ के कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी रविवार तदनुसार ता०६-११-३८ को देहली में उदयपुर नरेश श्रीमान्.....ने हमारे चरित्रनायक पूज्य श्री खूबचन्द जी महाराज एवं जैनदिवाकर प्रसिद्ध वक्ता पं० मुनि श्री चौथमल जी महाराज का व्याख्यान लगभग एक घन्टे तक श्रवण करके बड़ी प्रसन्नता प्रकट की ।

सप्तम परिच्छेद

आचार्य-क्रमावली

पूज्य श्रीहुक्मेन्दुजिन्मुनिरभूत्तच्छिष्येन्दुर्वभौ,
पूज्य श्रीरुदयाब्दिजिच्चवृते श्रीचौथमल्लः पुनः ।
श्री श्रीलालमुनिश्चपूज्यपदवीं मन्नेन्दुडमादधौ,
खूबेन्दुश्चविराजते शुभपदे भावी छगनल लजित् ॥

(१) पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी महाराज ।
(२) पूज्य श्री शिवलाल जी महाराज ।
(३) पूज्य श्री उदयसागर जी महाराज ।
(४) पूज्य श्री चौथमल जी महाराज ।

(५) पूज्य श्री श्रीलाल जी महाराज–(५) पूज्य श्री मन्नालालजी महाराज
(६) पूज्य श्री खूबचन्द जी महाराज
(७) युवाचार्य श्री छगनलाल जी म०

संक्षिप्त-परिचय

दृढार स्थितटोडग्रामवसनो जात्यौसवालमहान्,
पूज्यश्रीचपलोतगोत्र तिलको हुक्मेन्दुजिन्नामकः ।
नन्दर्षिद्विप भूमिते शुभतमे श्रीमार्गशीर्षे वरे,
श्रीलालेन्दुमुनीशतः शुभपरो जग्राह दीक्षामयम् ॥

सप्ताकाशनवैकसंख्यकमिते हुक्मेन्दुना दीक्षितः,
भूपं संदिदिशे प्रतापगढपं श्रीजावरास्वामिनम् ॥
वस्वक्षिग्रहभूमिते जिवजितं संवेगिनं पालिगम्,
शास्त्रार्थे परिजित्य कृष्णजलधिं शिष्यं तदीयं तदा ।
सम्यक्त्वं परिशिक्ष्यदीक्षितमलं चक्रे सभायां जयी,
सोऽयं रत्नललामके दिवमयात् तुर्याग्निन्देन्दुके ॥

(३) पूज्य श्री उदय सागर जी महाराज—आप जोधपुर (मारवाड) के निवासी थे। आपका जन्म बड़े साथ ओसवाल जाति के खीवेसरा गोत्र में हुआ था। आपने सं० १९०८ में पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज के पास दीक्षा स्वीकार की थी। आपने जावरा के नवाब साहब श्री गोस्त मोहम्मद खां जी और प्रताप गढ के नरेश श्रीमान् उदयसिंह जी सा० आदि कई राजा-महाराजों को उपदेश प्रदान किया था। संवत् १९२८ में आपने पाली (मारवाड) में एक संवेगी साधु श्री शिवजी रामजी के साथ इस शर्त पर शास्त्रार्थ करना निश्चय किया था कि पराजित होने वाले पक्ष को, अपना एक शिष्य विजयी पक्ष को देना होगा। तदनुसार शास्त्रार्थ हुआ। इस शास्त्रार्थ में आपकी विजय हुई। अतः शर्तानुसार संवेगी साधुजी ने अपने एक शिष्य श्री [illegible] को सहर्ष आपकी सेवा में समर्पण कर दिया। आपने श्री [illegible] सागरजी को शुद्ध सम्यक्त्व की शिक्षा देकर जैनेन्द्री दीक्षा से दीक्षित किया। आपका स्वर्गवास सं० १९[illegible] में [illegible]

महाराजाओं को आपने प्रतिबोध दिया। आपने भी गिरजों का परित्याग कर दिया था। संवत् १९७७ में जयतारण (मारवाड़) में आपका स्वर्गवास हुआ।

मन्नालालजिदोनवाकुलभूर्नागोरिगोत्रे मणिः,
सद्दीक्षामुदयादिचन्द्रनामकमुनेर्वरदस्मिननन्देन्दुके।
लब्ध्वा रत्नललामबामिरमुनिः प्राधीत्य शास्त्राणि च,
प्राप्याजमेरपुरेन्ससेलसदाः स्वाह्लाद् चन्द्रे स्वर्गं नु॥

(४) (च) [illegible] महाराज—आप [illegible] (मालवा) के [illegible] [illegible] संवत् १९३८ में [illegible]

[illegible]

व्यावच्याख्यगतं यथागुणमतं नामावलीसंगतं
धर्माराधनतत्परं शुभकरं पश्यन्तु भव्याः हृदि ॥१३॥

जैनादित्यबुधश्चतुर्थमलजिन् वक्ता प्रसिद्धो भुवि
योगेलीनमनो हजारिमलजित् कस्तूरचन्द्रो बुधः ।
श्रीमान् मौक्तिकलालजिच्च सुमुनिः प्रावर्तकः [illegible]
श्रीमान् केशरीमल्लजित्सुखमुनिः [illegible] ।

विद्यादान [illegible]हजारिमलजित् [illegible]
पाण्डित्येनयुत [illegible]मलजित् [illegible]
व्यासेवी मुनिनाथुलाल [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

(२) तपस्वी श्री हजारीमलजी महाराज
(३) पंडित मुनि श्री कस्तूरचन्दजी महाराज
(४) तपस्वी प्रवर्तक मुनि श्री मोतीलालजी महाराज
(५) सलाहकारक मुनि श्री केशरीमलजी महाराज
(६) प्रिय व्याख्यानी मुनि श्री सुखलालजी महाराज
(७) प्रिय व्याख्यानी मुनि श्री हर्षचन्द्रजी महाराज
(८) प्रवर्तक पंडित मुनि श्री हजारीमल जी महाराज
(९) युवाचार्य पंडित मुनि श्री छगनलालजी महाराज
(१०) व्यावची मुनि श्री नाथूलालजी महाराज
(११) साहित्य-रत्न गणिवर्य पं० मुनि श्री पारसचंदजी महाराज
(१२) तपस्वी मुनि श्री मयाचन्दजी महाराज
(१३) उपाध्याय पंडित मुनि श्री मदनमलजी महाराज
(१४) स्वाध्यायी मुनि श्री मैरूलालजी महाराज
(१५) प्रिय व्याख्यानी मुनि श्री वृद्धिचन्दजी महाराज
(१६) व्यावची मुनि श्री सोभागमलजी महाराज
(१७) तपस्वी मुनि श्री [illegible]लालजी महाराज
(१८) प्रिय व्याख्यानी मुनि श्री नाथूलालजी महाराज
(१९) प्रिय व्याख्यानी मुनि श्री गमलालजी महाराज
(२०) व्यावची मुनि श्री मयाचन्दजी महाराज
(२१) साहित्यरत्न पंडित मुनि श्री भगवतलालजी म०
(२२) साहित्य प्रेमी पंडित मुनि श्री प्रतापमलजी [illegible]
(२३) प्रिय व्याख्यानी मुनि श्री हीरालालजी [illegible]

(४६) ,, ,, ,, वर्धमानजी ,,

(४७) ,, ,, ,, नगीनचन्दजी ,,

(४८) ,, ,, ,, छोटे चम्पालालजी महाराज

(४९) ,, ,, ,, रोशनलालजी महाराज

(५०) व्याव्रची मुनि श्री बसतीलालजी महाराज

(५१) व्याव्रची मुनि श्री मगनलालजी महाराज

(५२) विद्याजिज्ञासु मुनि श्री चन्दनमलजी महाराज

(५३) विद्याजिज्ञासु मुनि श्री हर्षचन्दजी महाराज

(५४) तपस्वी मुनि श्री मेरूलालजी महाराज

(५५) तपस्वी मुनि श्री चांदमलजी महाराज

(५६) विद्याजिज्ञासु मुनि श्री मोतीलालजी महाराज

(५७) व्याख्यानी मुनि श्री हंसराजजी महाराज

(५८) तपस्वी मुनि श्री रेखूलालजी महाराज

(५९) विद्याजिज्ञासु मुनि श्री इन्द्रमलजी महाराज

(६०) सरलचित्त मुनि श्री केवरलालजी महाराज

(४६) ,, ,, ,, वर्धमानजी ,,
(४७) ,, ,, ,, नगीनचन्दजी ,,
(४८) ,, ,, ,, छोटे चम्पालालजी महाराज
(४९) ,, ,, ,, रोशनलालजी महाराज
(५०) व्याव्ची मुनि श्री वसंतीलालजी महाराज
(५१) व्याव्ची मुनि श्री मन्नालालजी महाराज
(५२) विद्याजिज्ञासु मुनि श्री चन्दनमलजी महाराज
(५३) विद्याजिज्ञासु मुनि श्री हर्षचन्दजी महाराज
(५४) तपस्वी मुनि श्री भेरुलालजी महाराज
(५५) तपस्वी मुनि श्री चांदमलजी महाराज
(५६) विद्याजिज्ञासु मुनि श्री मोतीलालजी महाराज
(५७) व्याख्यानी मुनि श्री वंशीलाल जी महाराज
(५८) तपस्वी मुनि श्री रेणुलालजी महाराज
(५९) विद्याजिज्ञासु मुनि श्री इन्द्रमलजी महाराज
(६०) नवदीक्षित मुनि श्री भँवरलालजी महाराज

ॐ शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

अलवर नरेश

आप मातृभाषा हिन्दी के बड़े प्रेमी और प्रजावत्सल नरेश थे। आपने पूज्य श्री खवचंद्रजी म० के संवत् १९७६ के चातुर्मास में तपस्वी श्री मयाचंदजी महाराज के तप-व्रत की पूर्ति के उपलक्ष में सारे अलवर शहर में आम अगता पलवाया था। अर्थात् आप-की आज्ञा से शहर में सब प्रकार के हिंसाकाण्ड जैसे बूचड़खाने आदि बन्द रहे थे।

जयपुर नरेश

आप मातृभूमि के सच्चे प्रेमी और प्रजापालक नरेश थे। आपने संवत् १९७७ में पूज्य श्री खवचंदजी म० के चातुर्मास में तपस्वी मुनि श्री मयाचन्दजी म० के तप-व्रत की पूर्ति के उपलक्ष में सारे जयपुर नगर में आम अगता पलवाया था। यहाँ तक कि उस रोज आपने अपनी राज-घोषणा द्वारा हलवाइयों की भट्टियाँ, भड़भूजों की भाड़े और तेलियों की घाणियाँ आदि समस्त हिंसात्मक कार्यों की सख्त मनाई करवाई थी। सिंहों को भी उस रोज दूध पिलवाया गया था। बूचड़खाने और कसाइयों की दुकानें आदि सभी हिंसात्मक कार्य उस रोज बन्द रहे।

श्रीमान् सेठ सौभागमलजी मेहता

आप [illegible] के नगर सेठ हैं। आप [illegible] के सच्चे उपासक हैं। पूज्य श्री [illegible] म० की [illegible]

श्री आचार्य गुण-गायन

[मालाकार अलङ्कार—कवित्त]

अग्नि व्रण गठपर, मठाधिश मठ पर,
ज्ञान वान शठ पर, करत प्रबन्ध है।
अर्क तम तर्क पर, घनश्याम वर्क पर,
फर्क पर जैसे सत तर्क चौ चन्द है॥
बाजलवा वृन्द पर, राहू जिम चंद पर,
पाला अरविन्द पर, पुष्प मकरन्द है।
मोहन महानवान, वानन के वृन्द पर,
खूब खूबचन्द पर पूज्य खूब चन्द है॥
करत उजाला आला, शखरीश निशहीमे,
पूज्य का उजाला ज्ञान रचत स्वछन्द को।
तू तौ शशी देता सुख निश मे सयोगिन कों,
पूज्य ज्ञान देदे करें मुक्ति आनन्द को॥
तू तौ सुख देता है सागर की लहरों को,
करके प्रदान पूज्य सुख यश मकरंद को।
पूज्य गुणगाई, हृदय सिद्धों को मनाई,
मैं चन्द को सराहूं या पूज्य खूबचन्द को॥२॥

—कवि मोहनलाल जैन लोहा मन्डी

उन्नति के कार्यों में आप उत्साह पूर्वक भाग लेते हैं। आप को शास्त्रों का अच्छा बोध है। कई साधु-साध्वियों को आप ने शास्त्राध्ययन करवाया है। मुनिराजों की अनुपस्थिति मे आप श्रावकों को शास्त्र सुनाते रहते है। आप धर्म के पूर्ण अनुरागी हैं। आपका भक्ति-भाव प्रसंशनीय है। आपकी देख-रेख में अनेक धार्मिक संस्थाओं का संचालन हो रहा है।

श्रीमान् दीपचन्दजी सुराना

आप गंगधार (झालावाड़) के उत्साही नवयुवक हैं। सेवा-भावी और धर्म प्रेमी हैं। आप अनेक वर्षों तक श्री जैनोदय-पुस्तक प्रकाशक समिति रतलाम द्वारा संचालित श्री जैनोदय प्रिंटिंग प्रेस मे मेनेजर के पद पर रह कर अपनी कार्य कुशलता का परिचय दे चुके है। सहन शीलता इमानदारी और सत्य-निष्ठा आपके जीवन की मुख्य विशेषताएँ हैं। आपको हिन्दी भाषा का अच्छा ज्ञान है। आपकी लिपि बड़ी सुन्दर और सुवाच्य है। आपने इस पुस्तक की हिन्दी भाषा के संशोधन मे प्रयाप्त प्रिश्रम किया है।

श्रीमान् बाबू निरंजनसिंहजी जैन

आप कपड के प्रसिद्ध व्यापारी और "श्री० अमानतरायजी निरंजनसिंह" की फर्म के प्रोप्राइटर है। आप तीतरवाड़ा (जिला मुजफ्फर नगर) के निवासी हैं। धर्मप्रेमी और उत्साही नवयुवक । आप योग्य पिता के सुयोग्य पुत्र हैं। पिता पुत्र दोनों के अच्छे हैं। दोनों सेवाभावी और दानी हैं। दोनों का बड़ा ही सरल और सीधा है। भक्ति-भाव प्रसंशनीय है।